॥ जय गौर ॥

प्रेममण्डलमालाख्य पञ्चमस्तवक ।

वेदान्त-स्यमन्तकः

श्रीमन्माध्व-गौड़ेश्वर वेदान्ताचार्य्य श्रीमद्बलदेव विद्याभूषणपादेन विरचिता—

आचार्य्य श्रीबालकृष्ण गोस्वामी-कृत तत्त्वप्रकाश नामक भाषाटीका ।

यह ग्रन्थ भजनाश्रम से प्राप्त हुआ और प्रेममण्डल संस्थापक

श्रीश्री १०८ श्री महन्त विहारी दासजी के चरणाश्रित

दीनबन्धु दास ने "टाइटिल पेज" छपा कर

प्रकाशित किया ।

चैतन्याब्द ४४६ } पौष कृष्णपक्ष { भिक्षा मात्र ।≈।

* श्रीश्रीराधारमणो जयति *

॥ जयति श्रीगौराङ्गः ॥

मन्तव्य ।

सम्प्रदायी भाइयों के श्रीचरणकमलों में आज मैं अत्यन्त दुःखित होकर नम्र निवेदन करने को उपस्थित हुआ हूं। हमारे प्रातःस्मरणीय सम्प्रदायाचार्य्य षड़् गोस्वामीचरणों ने वृक्षों के नीचे निवास कर अत्यन्त कठोर परिश्रम पूर्व्वक अनादि वहिर्मुख जीवसमूह को भगवत्सम्मुख कराने के लिये जो ग्रन्थरत्नो को संग्रह किये हैं, उसमें से कुछ ग्रन्थ बाङ्गला अक्षरों में ही प्रकाशित है। वस्तुतः विचार करने से हमारे सम्प्रदाय में व्याकरण, छन्द, भक्ति, रस और सिद्धान्त, काव्य, साहित्य, नाटक, अलङ्कार, वेदान्तोपनिषद्भाष्यादि ऐसा कोई वस्तु का अभाव नहीं है, जो कि अन्यत्र हमलोगों को जाना पड़े। परन्तु यह दुर्भाग्य की बात है, कि वह ग्रन्थ हिन्दी में न होने से पठन-पाठन और वस्तुतत्त्व निर्णय में हमलोग सम्पूर्ण अनभिज्ञ हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि तन मन धन से हिन्दी में प्रकाशित करने के लिये प्रयत्न करें। यह उद्देश को लेकर "नासिक-चतुःसम्प्रदाय-आखाड़ा" के महन्त श्रीश्री १०८ श्रीबिहारीदासजी महाराज ने "प्रेममण्डल" नाम से एक सभा स्थापित की है। इस सभा का हार्दिक उद्देश यह है कि "श्रीमाध्व-गौड़ेश्वर" सम्प्रदाय के ग्रन्थसमूह प्रकाशित करके पठन पाठन कार्य्य में सुबिधा क सके। आजतक इस सभाने उद्योग पूर्व्वक सम्प्रदायी भाइयों के करकमलों में निम्नलिखित ग्रन्थसमूह समर्पण किये है। आशा है, आपलोगों की सहानुभूति मिलने से इस सभा भविष्यत में पूर्ण रूप से कार्य्य कर सकेगी। निवेदन इति ।

श्रीदीनबन्धुदास ।

प्रकाशित ग्रन्थावलि ।

१—श्रीचैतन्य शिक्षामृत, हिन्दी, अंग्रेजी, माराठी भाषामें अनुवादित।

२—श्रीगौराङ्ग पदावली। ३—श्रीस्तोत्र-रत्नावली।

४—प्रमेय-रत्नावली। ५—वेदान्त-स्यमन्तक।

प्राप्तिस्थान—

श्रीमहन्त बिहारीदासजी महाराज।

चतुःसम्प्रदायी आखाड़ा, नासिक, "प्रेममण्डल" पञ्चवटी।

टाईटल पेज कृष्ण प्रिन्टिंग प्रेस वृन्दावन में छपा।

✽ श्री श्री राधारमणो जयति ✽

जयतु श्री गौरांगः ।

वेदान्त स्यमन्तकः

श्रीमन्माध्व गौडेश्वर वेदान्ताचार्य श्रीमद्बलदेव विद्याभूषणपादेन विरचितः तथा च आचार्य श्रीबालकृष्ण गोस्वामि कृत तत्वप्रकाश नामक भाषा भाष्य सहितः ।

सनातनं रूपमिहोपदर्शय-
न्नानन्द सिंधुं परितः प्रवर्द्धयन् ।
अन्तस्तमस्तोमहरः सराजतां
चैतन्य रूपो विधुरद्भुतोदयः ।। १ ।।

सुन्दर रूप सनातन जग में, दीयो सबै दिखाय ।
परिपूरन आनन्दसिन्धु कू दीयो जिन उमगाय ।।
अद्भुत उदय जासु, अन्तरतम दीयो सकल नशाय ।
सो चैतन्यचन्द्र जग माहीं राजैं शोभा पाय ।।१।।

प्रमाणैर्विना प्रमेय सिद्धिर्नेत्यत-स्तानि तावन्निरूप्यन्ते, तत्र प्रत्यक्षमेकं चार्वाकः, अनुमानञ्च वैशेषिकः, शब्दश्च कपिल पतञ्जली, उपमानञ्च गौतमः, अर्थापत्यनुपलब्धी च मीमांसकः, ऐतिह्यसम्भवौच पौराणिकः इति तत्त-न्नीर्णयेषु पश्यामः✽। तदित्थं प्रत्यक्षानु-मानशब्दोपमानार्थापत्यनुपलब्धिसम्भवै-तिह्यान्यष्टौ प्रमाणानिभवन्ति ।। २ ।।

प्रमाणों के बिना प्रमेय की सिद्धि नहीं होती, अतः प्रथम उनका ही निरूपण करते हैं। उनमें चार्वाक एक प्रत्यक्ष को ही मानता है, वैशेषिक प्रत्यक्ष और अनुमान दो को मानता है, कपिल और पतंजली शब्द के सहित तीन को मानते हैं, गौतम उपमान के सहित चार को मानते हैं, मीमांसक अर्थापत्ति और अनुपलब्धि के सहित छः को मानते हैं एवं पौराणिक ऐतिह्य और सम्भव को मिलाकर आठ को मानते हैं, यह बात इन सब मतों को देखने से ज्ञात होती है । इस प्रकार प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, ऐतिह्य और सम्भव ये आठ प्रमाण होते हैं ।। २ ।।

✽ क्वचित् “वदामः” इति पाठः ।

तेष्वर्थसन्निकृष्टमिन्द्रियं प्रत्यक्षं, घटमहं चक्षुषा पश्यामित्यादौ ।

अनुमिति करणमनुमानं, गिरि-र्वन्हिमान् धूमादित्यादौ । अग्न्यादि-ज्ञानमनुमितिः तत्करणं धूमादिज्ञानम् । आप्त वाक्यं शब्दः यथा नदीतीरे

पञ्चवृक्षाः सन्ति, यथा चाग्निष्टोमेन स्वर्ग कामो यजेतेत्यादि ।

उपमिति करणमुपमानं, गो सदृशो गवय इत्यादौ; संज्ञा-संज्ञि-सम्बन्ध-ज्ञानमुपमितिः, तत्करणं सादृश्य ज्ञानम् ।

अनुपपद्यमानार्थ दर्शने नोपपाद-कार्थान्तर कल्पनमर्थापत्तिः । पीनो देवदत्तो दिवा न भुंक्ते इत्यादौ, इह दिवाऽभुञ्जानस्य पीनत्वमनुपपन्नं सत्तस्य नक्तं भोजित्वं गमयति ।

घटाद्यनुपलब्ध्या घटाद्यभावोनिश्चितः अनुपलब्धिस्तूपलब्धेरभाव इत्यभावेन प्रमाणेन घटाद्यभावो गृह्यते ।

शते दशकं सम्भवतीति बुद्धौ संभा-बनं सम्भवः ।

अज्ञात वक्तृकतागत पारम्पर्य प्रसिद्धिमैतिह्यं, यथेह वटे यक्षो निव-सतीत्यादौ ।

अंगुल्युत्तोलनतो घटदशकादि ज्ञान करी चेष्टापि कैश्चन मानमिष्यते । एवं प्रमाणवादिनो विविधा ॥ ३ ॥

इनमें इन्द्रिय के अपने अर्थ (विषय) में संयुक्त होने को प्रत्यक्ष कहते हैं, जैसा कि "मैं घड़ा को देखता हूं" इत्यादि स्थानों में होता है।

अनुमिति के करण का नाम अनुमान है, जैसा कि, "पहाड़ पर अग्नि है, क्यों कि वहां धूआं हो रहा है" इत्यादि स्थलों पर होता है। यहां अग्नि आदि का ज्ञान अनुमिति है - धूआं आदिका ज्ञान उसका करण है ।

आप्त (यथार्थवक्ता) का वाक्य शब्द कहाता है, जैसे कि "नदी के किनारे पांच वृक्ष हैं" या "स्वर्ग चाहने वाला अग्निष्टोम यज्ञ करे" इत्यादि वाक्य हैं ।

उपमिति के करण का नाम उपमानहै, जैसा कि गौ के सदृश गवय (नीलगाय) होती है, इत्यादि वाक्यों में जो नाम और नामी का संबंधज्ञान है वह उपमिति है, उसका जो सादृश्य ज्ञान है, वह करण है ।

असम्भव बात को देखकर किसी दूसरी सम्भव बात की कल्पना करना अर्थापत्ति कहाता है, जैसे कि "मोटा देवदत्त दिन में भोजन नहीं करता" इत्यादि स्थलों में है । यहां पर दिन में भोजन न करने वाले का मोटा होना असंभव है; इससे उसका रात्रि में भोजन करना सिद्ध है।

घडा आदिके दिखाई न देने सेही घड़ा आदिका अभाव निश्चित होता है, किसी वस्तुका दिखाई न देना उसके दिखाई देने का अभाव है, इस अभाव (प्रमाण) द्वारा घड़ा आदि के अभाव का ज्ञान होता है ।

"सौ में दश का होना संभव है" इस प्रकार बुद्धि में संभावना होने का नाम संभव प्रमाण है।

जो बात कहने वालेको मालूम न हो, परम्परा से सुनाई देती हो, उसे ऐतिह्य प्रमाण कहते हैं; जैसे कि, इस बड़ के पेड़ पर यक्ष रहता है—इत्यादि ।

अँगुली उठाकर घड़ों की दश संख्या को बताने वाली चेष्टा को भी कोई कोई प्रमाण मानते हैं । इस प्रकार प्रमाण वादी बहुत से हैं ॥ ३ ॥

तेषु प्रत्यक्षमात्रवादिना चार्वाकेना-प्रतिपन्नः सन्दिग्धो विपर्यस्तो वा पुमान्नशक्यो व्युत्पादयितुं । न चार्वाग्-दृशा प्रत्यक्षेण पुरुषान्तर वर्तिनोऽज्ञान

सन्देह विपर्यया: शक्या: प्रतिपत्तुं । नचानवभूतपरगताज्ञानादिर्वक्तुं प्रवृत्तो ग्राह्यवाक् प्रेक्षावतां ॥ ४ ॥

इनमें से केवल प्रत्यक्ष को प्रमाण मानने वाला चार्वाक् किसी मनुष्य को अज्ञ या संदिग्ध या भ्रान्त प्रति पादन नहीं कर सकता, क्यों कि चार्वाक् के सदृश मनुष्य प्रत्यक्ष प्रमाण से दूसरे मनुष्य के अज्ञान, संदेह, और भ्रम को नहीं जान सकता। जो दूसरों के अज्ञानादि को जानता ही नहीं, उसकी बात को ज्ञानवान ग्रहण नहीं करते ॥ ४ ॥

तस्मादनिच्छतापि तेनानुमानमुपादेयमेव, अत: स्तु परिहस्यते:-

"चार्वाक तव चार्वांगी,
जारतो वीक्ष गर्भिणीम् ।
प्रत्यक्षमात्रविश्वास,
घनश्वास किमुज्झसीति ॥

तेन च परगतानज्ञानादीनभिप्रायभेदाद्वाक्यभेदाल्लिंङ्गादनुमाय तदज्ञानादिपरिहारे प्रवृत्तो ग्राह्यवाक्स्यादिति ॥५॥

इस लिये वह नहीं चाहता है, तौ भी उसे अनुमान प्रमाण मानना ही पड़ता है; इसी से उसका परिहास करते हैं कि:—

हे चार्वाक् ! तुम तो केवल प्रत्यक्ष पर ही विश्वास करते हो, तब तुम अपनी चर्वाङ्गी को जार पुरुष से गर्भिणी देख कर क्यों दुखी होते हो ?

इसलिये जो अभिप्राय भेद, वाक्य भेद एवं चिन्ह द्वारा अनुमान से दूसरे के अज्ञान को जानकर, उसके दूर करने में प्रवृत्त होता है; उसी की बात मानी जाती है ॥ ५ ॥

यत्तु शब्दोपमानयोर्नैव पृथक् प्रामाण्यमिष्यते,अनुमाने गतार्थत्वादिति वैशेषिकं मतमित्याहुस्तन्मन्दं, ग्रहचेष्टादावनुमाना प्रवृत्तेः,विशेषन्तु परिवदिष्यामः। तदेव प्रत्यक्षानुमानशब्दा: प्रमाणानीति वृद्धाः, उपमानादीनामेष्वन्तर्भावात् पृथक् प्रमाणता नेत्याहुरिति ॥६॥

वैशेषिक का जो यह मत कहा जाता है कि, वे शब्द और अनुमान को अलग प्रमाण नहीं मानते, क्यों कि, ये अनुमान में आजाते हैं, सो ठीक नहीं है—ग्रहों की गति जानने में अनुमान काम नहीं देता। विशेष आगे कहेंगे। इसलिये वृद्ध पुरुषों ने प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन प्रमाण ही स्वीकार किये हैं। उपमानादिकोंका इन्हींमें अन्तर्भाव होनेसे उनकी पृथक् प्रमाणता नहीं कही गई है ॥ ६ ॥

तथाहि, उपमानं खलु यथा गौ स्तथा गवय इति वाक्यं तज्जनिता च धीरागम एव, गवय शब्दो गो सदृशस्याभिधायीति य: प्रायय: सोप्यनुमानमेव। य: शब्दो वृद्धैर्यत्रार्थे प्रयुज्यते सोऽसति वृत्यन्तरे तस्याभिधायी यथा गोशब्दो-गोत्वस्य। प्रयुज्यते च गोसदृशो गवय शब्द इति तस्यैव योऽभिधायीति ज्ञानमनुमानमेव। यत्तु चक्षुः सन्निकृष्टस्य गवयस्य गो सादृश्य ज्ञानं तत् प्रत्यक्षमेवेति नोपमानं पृथक् वाच्यं ॥७॥

जैसा कि—"गौ के समान गवय होता है" इस उपमान वाक्य से जो बुद्धि उत्पन्न होती है,

वह आगम अर्थात् शब्द ही है । और गवय शब्द गौके समान की संज्ञा है, यह जो प्रतीति है सो भी अनुमान ही है। जिस शब्द को वृद्ध लोग जिस अर्थ में प्रयोग करते हैं, यदि उसमें लक्षणा आदि दूसरी वृत्तियां न हों तो वह उसकी संज्ञा होती है। जैसा कि, गो शब्द गौ का ही वाचक है। और "गौ के समान गवय होता है" इस प्रयोग में गवय शब्द उसी का वाचक है जो गौ के समान होता है, यह ज्ञान अनुमान ही है। और जो नेत्र से देखने पर गौ के समान गवय के होने का ज्ञान है, वह प्रत्यक्ष ही है, अतएव उपमान को पृथक प्रमाण नहीं कहना चाहिये ॥ ७ ॥

यत्तु दिवाऽभुञ्जाने पीनत्वं नक्तं भुक्तिं विनानोपपद्यते अतः पीनत्वान्यथाऽनुपपत्ति प्रसूतार्थापत्तिरेव रात्रिभोजने प्रमाणमिति तन्न । तस्यानुमानेऽन्तर्भावात्। अयं रात्रौ भुंक्ते दिवाऽभुञ्जानत्वे सति पीनत्वात्; यस्तु रात्रौ न भुंक्ते न स दिवाऽभुञ्जानत्वे सति पीनः। यथा दिवारात्रौचाभुञ्जानोऽपीनः । नचायं तथा, तस्मात्तथेति केवल व्यतिरेकानुमानगम्यमेतत् ॥ ८ ॥

और जो दिन में भोजन किये बिना मोटापन है, वह रात में बिना भोजन किये नहीं हो सकता, इस लिये अन्य किसी प्रकार से मोटापन नहीं है, इस विचार से उत्पन्न अर्थापत्ति ही रात के भोजन में प्रमाण है, सो नहीं है क्योंकि वह तो अनुमान के ही अन्तर्गत है। यह रात में भोजन करता है, क्योंकि दिन में भोजन न करने पर भी मोटा है, जो रात में भोजन नहीं करता वह दिन में भोजन किये बिना मोटा नहीं हो सकता, जैसे कि दिन रात भोजन न करने वाला (व्रती) मोटा नहीं होता। यह वैसा (व्रती) नहीं है, इस लिये यह वैसा (भोजन करने वाला) है, यह बात केवल व्यतिरेकानुमान से ही जानी जा सकती है ॥ ८ ॥

अनुपलब्धिश्च न पृथक् प्रमाणं, घटाद्यभावस्य चाक्षुषत्वात्, अभावं प्रकाशयदिन्द्रियं स्वयं बद्धभाव विशेषण मुखेनेति नाप्रसङ्गः ॥

सम्भवस्तु शतेदशकाद्यवगमः स चानुमानमेव, शतत्वं हि दशकाद्यविनाभूतं शते दशकादि सत्त्वमवगमयतीति॥

ऐतिह्यन्त्वनिर्दिष्टवक्तृकत्वेन सांशयिकत्वान्नप्रमाणं। आप्तवक्तृकत्वे निश्चितेतु तस्यागमान्तर्भाव; एवंति त्रीण्येव प्रमाणानि—

प्रत्यक्षश्चानुमानञ्च
शास्त्रञ्च विविधागमम् ।
त्रयं सुविदितं कार्यं
धर्म्मशुद्धि मभीप्सतेति ॥ ९ ॥

और अनुपलब्धि कोई पृथक् प्रमाण नहीं है, क्योंकि घड़ा आदि का अभाव तो दिखाई ही देता है। इन्द्रिय स्वयं बद्धभाव को प्राप्त हो, विशेषण बन कर अभाव को प्रकास करती है, इस लिये इन्द्रिय ही अभाव के प्रत्यक्ष में प्रमाण है, इसमें कोई दोष नहीं है ॥

और जो सम्भव प्रमाण है कि, सौ में दस का होना, सो तो अनुमान ही है; क्योंकि सौ दस के बिना हो ही नहीं सकते। इससे सौ में दस का होना सिद्ध ही है।

और ऐतिह्य भी किसी वक्ता के निश्चय न होने के कारण संशयात्मक होने से

प्रमाण नहीं हो सकता । और यदि वक्ता निश्चित एवं प्रत्यक्षदर्शी है तो उस (ऐतिह्य) की आगम अर्थात् शब्द प्रमाण में ही गणना है । इस प्रकार तीन ही प्रमाण हैं, जैसा कि लिखा है—

धर्म शुद्धि की कामना करने वाले को प्रत्यक्ष, अनुमान एवं विविध आगम शास्त्र, ये तीन ही (प्रमाण) भली प्रकार जानने चाहियें ॥ ६ ॥

तत्र प्रत्यक्षं स्थूलमेव सन्निकृष्टं गृह्णाति नातिदूरं नचातिसमीपं यथा खमुत्पतन्तं पक्षिणं, यथा च नेत्रस्थ मञ्जनम् । मनस्यनवस्थिते स्थूलमपि तन्न-गृह्णाति,यदुक्तं-मे मनोऽन्यत्रगतं मया न दृष्टमित्यादि । अभिभूतमनुद्भूतञ्च संपृक्तमतिसूक्ष्मञ्च तन्नगृह्णाति, यथा रविकिरणाभिभूतं ग्रहनक्षत्र मंडलं,यथा क्षीरेदधिभावं, यथा च जलाशये जल-दविमुक्तान् जलविन्दून्, यथा प्रत्यक्षं सन्निकृष्टमपि परमाणुन् ॥ १० ॥

इनमें प्रत्यक्ष, निकटवर्ति स्थूल वस्तु को ही ग्रहण करता है, अत्यन्त दूर और अत्यन्त समीप की वस्तु को नहीं करता, जैसे कि आकाश में उड़ते हुए पक्षी को और नेत्र में स्थित अंजन को नहीं देखता । मन स्थिर न होने पर वह स्थूल को भी ग्रहण नहीं करता, जैसा कि कहते हैं "मेरा मन कहीं अन्यत्र था, मैंने नहीं देखा" इत्यादि। अभिभूत, अनुद्भूत, संपृक्त और अतिसूक्ष्म वस्तु को भी वह ग्रहण नहीं करता, जैसे कि सूर्य की किरणों से ढके हुए ग्रह नक्षत्र मंडल को, दूध में दही को, तालाब में गिरी हुई वर्षा की बूंदों को एवं प्रत्यक्ष और समीप होते हुए भी परमाणुओं को नहीं देखता ॥१०॥

क्वचिद्व्यभिचरतिचैतत्, मायामूर्द्धाऽ-वलोके यज्ञदत्तस्यैवायं मूर्द्धेत्यादौ, यद्य-प्यप्रत्यक्षेऽपि वस्तुनि लिङ्गादनुमानं प्रवर्तयितुमलं,तथापि तत् क्वचिद्व्यभि-चारदृष्टं, वृष्ट्यातत्कालेनिर्वापितवह्नौ चिरमधिकोदित्वर धूमे–पर्वते बह्निमान् धूमादित्यादौ ॥ ११ ॥

कहीं कहीं इस (प्रत्यक्ष) में व्यभि-चार (भ्रम) भी हो जाता है, जैसे माया से बने हुए शिर को देख कर यह ज्ञान होता है कि, यह यज्ञदत्त का ही शिर है इत्यादि में । यद्यपि अप्रत्यक्ष वस्तु में चिन्ह को देख कर अनुमान प्रवृत्त हो सकता है, तो भी वह कहीं कहीं दूषित दिखाई देता है, जैसे कि वृष्टि से शीघ्र ही बुझी हुई अग्नि के धूआं को देख कर यह अनुमान होता है कि, पर्वत पर अग्नि है; क्योंकि धूआं हो रहा है ॥११॥

तदेवं मुख्ययोरनयोर्व्यभिचारित्वात्, तदन्येषान्तु तदुपजीविनां सुसिद्धं तत् ।

आप्तवाक्य लक्षणः शब्दस्तु कुत्रापि नव्यभिचरति, हिमालये हिमं रत्नालये रत्नमित्यादि ।

रविकान्ताद्रविकर संयोगे बह्निराशि-ष्टनीत्यादिः ।

सखलु तन्निरपेक्षस्तदुपमर्दीतदविरोध्यस्तत् सचिवस्तदनुग्राही तद्गम्य साधकतमश्चदृष्टः ॥ १२ ॥

जब कि ये दोनों मुख्य प्रमाण ही दूषित हैं, तब जो इनके आश्रय में हैं उनका दूषित होना तो भली प्रकार सिद्ध है ही । आप्तवाक्य लक्षण वाला शब्द प्रमाण कहीं भी दूषित नहीं होता, जैसा कि, हिमालय में हिम, रत्नालय में रत्न होता है, रविकान्ता के साथ सूर्य किरणों का संयोग होने से अग्नि उत्पन्न होती है, इत्यादि ।

यह (शब्द प्रमाण) उन (प्रत्यक्ष और अनुमान) की अपेक्षा नहीं करता, उनका उपमर्दक (बाधक) है, उनका अविरोधी, उनका सचिव, उनका अनुग्रह कर्ता एवं उनका अगम्य साधकतम है । ॥ १२ ॥

तथाहि दशमस्त्वमसीत्यादौ तन्निरपेक्षः स एव शब्दः श्रोत्रं प्रविशन्नेव दशमोऽहमस्मीति प्रमायास्तिरस्कारिणं मोहं विनिवर्त्तयतीति तत्वं स्पष्टं ॥ १३॥

जैसा कि "दशवें तुम हो" इत्यादि स्थलों में प्रत्यक्ष और अनुमान से स्वतन्त्र शब्द ही कान में प्रवेशकर "दशवां मैं हूं"इसप्रतीति को रोकने वाले मोह का विनाश करता है, इससे शब्द प्रमाण की निर्पेक्षता स्पष्ट है ॥१३॥

सर्पदंष्टे त्वयि विषं नास्तीति मंत्र इत्यादौ, वह्नि तप्तमङ्गं वह्नितापेन साम्यतीत्यादौ च तदुपमर्दकत्वं; सौवर्णंभस्मसितं स्निग्धमित्यादौ एकमेवौषधं त्रिदोषघ्नमित्यादौ, च स्वप्रतिपादिते ताभ्यामविरोधत्वञ्च, अग्निर्हिमस्य भेषजमित्यादौ, हीरकगुणविशेषमदृष्टवाद्भिः पार्थिवत्वेन सर्वं पाषाणादि द्रव्यं लोहच्छेद्यमित्यनुमातुं शक्यं न तु श्रुततादृशगुणकं हीरकं तच्छेद्यमित्यादौ च यथाशक्तिताभ्यां साचिव्यकरणं। दृष्टचर मायामूढ्धः पुंसोभ्रान्त्याप्यविश्वस्ते सएवायमित्याकाशवाण्यादौ लोहच्छेद्ये पाषाणादौ, अरे शीतार्त्ताः पान्थामास्मिन् वह्निं सम्भावयत दृष्टमस्माभिरत्रासौ वृष्ट्याधुनैव निर्वाणः किंत्वस्मिन् धूमाद्गारिणि गिरौसौस्तीति,तेनैव ते बद्धमूले प्रतीते तच्छक्य गम्ये साधकतमत्वञ्च, ग्रहाणां राशि सञ्चारे सूर्योपरागादौच ॥ १४ ॥

कोई सर्प से डसे हुए को मंत्र से झाड़ कर यह कहदे कि, तुम में अब विष नहीं है, या अग्नि से जला हुआ अग्नि के ताप से ही अच्छा होता है इत्यादि स्थलों में शब्द उन (प्रत्यक्ष अनुमान) का उपमर्दक है एवं "सुवर्ण भस्म चिकनी होती है" "एक ही औषधि त्रिदोष को नाश करती है" इत्यादि स्थलों में शब्द अपने अर्थ के प्रतिपादन में उन (प्रत्यक्ष, अनुमान) का अविरोधी है। "अग्नि शीत की औषधि है" इत्यादि स्थलों में एवं हीरा के विशेष गुण न जानने वाला उसे पत्थर जान कर "सभी पत्थर लोहे से कट जाते हैं" ऐसा अनुमान कर सकता है, परन्तु जिसने हीरा का यह गुण सुन रखा है कि वह लोहे से नहीं कटता, वह ऐसा अनुमान नहीं कर सकता,

(क्रमशः)

इत्यादि स्थलों में प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों यथा शक्ति शब्द काही अनुगमन करतेहैं । पूर्वमें कृत्रिम मस्तक को देखने से मनुष्य को भूल से वास्तविक मस्तक देख कर भी जब अविश्वास होता है, तब आकाशवाणी से यह ज्ञात हो कि, यह उसी मनुष्य का मस्तक है इत्यादि अवस्था में, "पत्थर लोहे से कटता है" इत्यादि में और "अरे शीतार्त पथिक यहां अग्नि की सम्भावना मत कर, क्यों कि हमने देखा है वह वृष्टि से अभी बुझ गई है, किन्तु उस पर्वत पर धूआं निकल रहा है वहां वह है" इत्यादि स्थलों में उसी (शब्द) से ही वे (प्रत्यक्ष अनुमान) बद्धमूल प्रतीत होते हैं । और जहां प्रत्यक्ष एवं अनुमान की शक्ति नहीं पहुँचती, वहां शब्द ही साधकतम है, जैसे कि ग्रहों का राशियों पर जाना और सूर्य ग्रहण का लगना इत्यदि ॥ १४ ॥

तदेवं सर्वतः श्रैष्ठे शब्दस्यस्थिते तत्व-निर्णायकस्तु श्रुतिलक्षण एव नत्वार्ष-लक्षणोऽपि "नावेदीवन्मनुतेतं बृहन्त-मौपनिषदं पुरुषं पृछामीत्यादि"श्रुतिभ्यः ऋषीणां मिथो विवाद दर्शनेन तद्वा-क्यानां तन्निर्णायकत्वासम्भवात् ,नित्यः श्रुतिशब्दः वाचाविरुप नित्येति श्रवणात् "अनादिनिधनानित्यावागु-त्सृष्टास्वयंभुवा । आदौ वेदमयी विद्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ।" इत्यादि स्मर-णाच्च भ्रमादि दोषविशिष्ट जीवकर्तृ-कत्व विरहान निर्दोषश्च स एव भवति ॥ १५ ॥

इति वेदान्तस्यमन्तके प्रमाण निर्णयः प्रथमः किरणः ।

इस प्रकार सब प्रमाणों से शब्द प्रमाण की श्रेष्ठता सिद्ध होने पर तत्व निर्णय में श्रुतिलक्षण शब्द ही समर्थ है—आर्ष शब्द भी नहीं है-जैसा लिखा है—"वेद न जानने वाला उसे नहीं जानता उपनिषदों में कहे हुए महान्पुरुष के जानने की इच्छा करता हूं" । ऋषियों में परस्पर विवाद होने के कारण उनके वाक्य तत्वनिर्णय में अस-मर्थ हैं । श्रुति शब्द नित्य है, जैसा कि लिखा है— "सुन्दर वेदवाणी नित्य है, आदि अन्त से रहित नित्य वाणी स्वयंभू से प्रकट हुई, सब से पहली वेदमयी विद्या है जिससे सब की प्रवृत्ति है"— इत्यादि वाक्यों द्वारा सिद्ध है कि, भ्रमादि दोषों से युक्त जीव का वाक्य न होने के कारण वही (वेदमयी वाणी ही) निर्दोष है ॥ १५ ॥

वेदान्तस्यमन्तक के प्रमाण निर्णय नामक प्रथम किरण का तत्व प्रकाश भाषाभाष्य समाप्त हुआ ।

❁ द्वितीयः किरणः ❁

अथ प्रमेयाणि निर्णीयन्ते ता-निचपञ्चधा; ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल, कर्म भेदात् , तत्र विभुःविज्ञाना-नन्दः सार्वज्ञादि गुणवान् पुरुषोत्तम ईश्वरः "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यः, सर्वज्ञः सर्ववित् , सत्यकामः सत्यसंकल्पः, स उत्तमः पुरुष" इत्यादि श्रवणात् ।

स च सर्वेषां स्वामी, जनि-विनाश शून्यः । "तमीश्वराणां परमं महेश्वरं, तं दैवतानां परमञ्च दैवतं । पति पतीनां परमं परस्ताद्विदा मदेवं भुवनेशमीड्यमिति ।।" "स कारणानां

कारणाधिपाधिपो, नचास्य कश्चिज्जनिता न चाधिप ।" इति च श्रवणात्॥ १ ॥

अब प्रमेयों का निर्णय कहते हैं:--ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल एवं कर्म्म के भेद से प्रमेय पांच प्रकार के हैं । इनमें ईश्वर व्यापक, विज्ञानानन्द,सर्वाज्ञादि गुणवान एवं पुरुषोत्तम हैं। जैसा कि श्रुतियों में लिखा है—"विज्ञान और आनन्द ब्रह्म है" "ब्रह्म सत्य है, ज्ञान है एवं अनंत है" 'जो सर्वज्ञ है, सर्वविन् है, सत्य काम है, सत्य संकल्प है, और उत्तम पुरुष है" ।

वह सब का स्वामी जन्म, विनाश से रहित है "उस ईश्वरों के भी ईश्वर परम महेश्वर को, देवताओं के भी परम देवता को, पतियों के भी पतिको, परे से भी परे को, भुवनों के ईश एवं स्तुती करने योग्य देव को हम जानना चाहते हैं ।" "वह करणों का भी कारण और अधिपतियों का भी अधिपति है, न उसका कोई जनक (उत्पन्न करने वाला) है, न कोई अधिपति है ॥ १ ॥

तस्यैवम्भूतस्य क्वचित् जन्मत्वहीन स्वरूप स्वभावस्याविर्भाव मात्रं बोध्यम्'अजायमानो बहुधा विजायते' इतिश्रुतेः । "अजोऽपिसन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममाययेति ॥" स्मृतेश्च । अतएव इहास्य विज्ञानात् मुक्तिरित्युक्तम्।"जन्म कर्म्म चमे दिव्यमेवं योवेत्ति तत्वतः । त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्मनैति मामेति सोऽर्जुनेति" ॥ २ ॥

इन प्रमाणों के अनुसार इस प्रकार के जन्म विहीन ईश्वर के स्वरूप स्वभाव का कहीं आविर्भाव मात्र जनना चाहिये, जैसा कि श्रुति में लिखा है:—"अजन्मा होकर प्रायः जन्म लेता है" और गीता स्मृतिमें भी कहा है:-"अज, अव्ययात्मा एवं भूतों का ईश्वर होकर भी अपनी प्रकृती का आश्रय कर आतममाया से उत्पन्न होता हूं" । इसलिये ईश्वर के जानने में ही मुक्ति कही गई है, जैसा कि कहा है--"हे अर्जुन ! मेरे इस प्रकार के दिव्य जन्म कर्म को जो तत्वतः जानता है, वह शरीर को त्याग कर फिर जन्म नहीं लेता और मुझको प्राप्त होता है" ॥ २ ॥

ननु ब्रह्मरुद्रादयोपि लोकेश्वराः कथ्यन्ते, सत्यं, भवन्तु ते ईश्वराः सामर्थ्ययोगात् ; पारमैश्वर्य्यन्तु हरेरेव, तमीश्वराणामित्यादि श्रुतेः । ततश्च राज सेवकेष्वपि राजत्ववत्तेष्व धीश्वरत्वतद्गुणांश-योगाद्भाक्तं सिध्यति ॥

ब्रह्मादयो हि हरेरुत्पन्नाः श्रूयन्ते, श्री नारायणोपनिषदि,अथपुरुषो ह वै नारायणो कामयत प्रजाः सृजेयेत्यारभ्य नारायणाद् ब्रह्मा जायते, नारायणाद्रुद्रो जायते, नारायणात प्रजापतिः प्रजायते, नारायणादिन्द्रो जायते, नारायणादष्टौ वसवो जायन्ते, नारायणादेकादशरुद्रा जायन्ते, नारायणाद् द्वादशादित्या जायन्ते, इत्यादिना ॥

महोपनिषदि च,एको हवैनारायण आसीत् न ब्रह्मा न ईशान इत्यारभ्य तस्य ध्यानान्तस्थस्य ललाटात्र्यक्षः शूलपाणिः पुरुषोऽजायत, बिभ्रच्छ्रियं सत्यं ब्रह्मचर्य्यं तपो वैराग्यमित्यादि । तत्र-ब्रह्मा चतुर्मुखो जात इत्यादि च श्रूयते ॥ ३ ॥

जो यह कहो कि ब्रह्मरुद्र आदि भी लोकेश्वर नाम से कहे जाते हैं,सो सत्य है–उन्हें सामर्थ्य के योग से ईश्वर होने दो–परम ईश्वरत्व तो हरि को ही है—जैसा कि श्रुतिमें कहा है–वह ईश्वरों का भी ईश्वर है। जैसे राजा के सेवक को राजा कहा जाता है, तैसे ही भगवान् के गुणांश के योग से इनका ईश्वर होना स्पष्ट सिद्ध है।

नारायणोपनिषद् में ब्रह्मा आदि की उत्पत्ति श्रीहरि से ही सुनी जाती है, आदि पुरुष नारायण ने कहा कि:—मैंने प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा की, तब नारायण से ब्रह्मा हुये. नारायण से रुद्र हुये, नारायण से प्रजापति हुये, नारायण से इन्द्र हुये. नारायण से अष्ट वसु हुये. नारायण से एकादश रुद्र हुये, और नारायण से द्वादश आदित्य हुये इत्यादि।

और महोपनिषद् में लिखा है—सृष्टि के आदि में एक मात्र नारायण ही थे। न ब्रह्मा थे, न ईशान। यहां से आरम्भ कर श्रुति कहती है—ध्यान में स्थित उन नारायण के ललाट से त्रिनेत्र शूलपाणि पुरुष उत्पन्न हुये थे, जो श्री, सत्य, ब्रह्मचर्य्य, तप और वैराग्यको धारण किये हुये थे, और वहीं पर चतुर्मुख ब्रह्मा का होना भी लिखा है॥ ३॥

नारायण शब्दः खलु श्रीपते रेव संज्ञा "पूर्व्व पदात् संज्ञाया मग" इति तस्यामेव णत्व विधानात्॥ ४॥

नारायण नाम श्रीपती का ही है, "पूर्व्व पदात संज्ञाया मगः" पाणिनी के इस सूत्र से संज्ञा में ही णकार का विधान है॥ ४॥

श्रीविष्णुपुराणेच-यस्य प्रसादादह-मच्युतस्य, भूतः प्रजासृष्टि करोऽन्तकारी। क्रोधाचरुद्रः स्थिति हेतु भूतो यस्माच मध्ये पुरुषः परस्ता दित्यादि। मोक्षधर्मेच, प्रजापतिञ्च रुद्रं चाप्यहमेव सृजामिवै। तौ हि मां न विजानितो ममामाया विमोहिता विति। छन्दोगास्तु रुद्रं विधिपुत्रं पठन्ति। विरूपाक्षायधात्रंशाय विश्वदेवाय सहस्राक्षाय ब्रह्मणः पुत्राय जेष्ठाया मोघाय कर्म्माधिपतये इति। शतपथे चाष्टमूर्त्त ब्राह्मणे-संवत्सरात् कुमारोऽजायत। कुमारो रोदित्, तं प्रजापतिरब्रवीत्, कुमार! किं रोदिषि? यच्च मम तपसो जातोसीति, सोऽब्रवीत्, अनपहत पाप्मा-हमस्मि हन्त नामानि मे देहीत्यादिना।

श्रीबाराहे च नारायणः परोदेवस्तस्मा-ज्जातश्चतुर्मुखः। तस्माद्रुद्रो भवद्देवः स च सर्वज्ञताङ्गत इति तदिदञ्च कल्पभेदात् संगमनीयं॥ ५॥

श्री विष्णु पुराण में भी लिखा है:—जिन अच्युत की कृपा से भूत प्रजा की सृष्टि करने वाला मैं (ब्रह्मा), क्रोध से अन्त करने वाले रुद्र हुये एवं सृष्टि के कारण-स्वरूप परम पुरुष विष्णु प्रकाशित हुये। मोक्ष धर्म्म में लिखा है—प्रजापति (ब्रह्मा) और रुद्र को मैं ही उत्पन्न करता हूं। वे दोनों मेरी माया से मोहित होकर मुझे नहीं जानते हैं। छान्दोग्य में तो रुद्र को ब्रह्मा का पुत्र कहा गया है-विरूपाक्ष, धाता के अंश, विश्वदेव, सहस्राक्ष, ब्रह्मा के पुत्र, ज्येष्ठ, अमोघ एवं कर्म्माधिपति के लिये, इत्यादि। और शत-पथ के अष्टमूर्त ब्राह्मण में लिखा है--सम्बत्सर से कुमार हुये, कुमार रोने लगे, उनसे प्रजापति ने पूछा-कुमार! क्यों रोते हो? क्यों कि, मेरे तप से उत्पन्न हुये हो। उन्होंने कहा--मैं पाप से रहित नहीं हूं, मुझे नाम प्रदान कीजिये इत्यादि।

श्री बाराह पुराण में लिखा है--नारायण परम देव हैं, उनसे चतुर्मुख (ब्रह्मा) हुये, उन्हीं से रुद्र देव हुये, जो सर्वज्ञता को प्राप्त हुये, यह कल्प भेद से जानना चाहिये॥ ५॥

ननुमहेशादि समाख्यया रुद्रपारतम्यं मन्तव्यं मैवं । तस्या महेन्द्रादि समाख्यावद्वैफल्यात् । इन्द्र समाख्यैव शक्रस्य तत् साधयेत् । "इदिपारमैश्वर्ये" इति धातु पाठात्, किं पुनर्महत्व विशेषितासौ, तस्यानीश्वरत्वं सर्वाभ्युपगतं, ऐश्वर्य्यञ्च कर्म्मायत्वं शतमख समाख्यायावगम्यते । एवं महादेव समाख्यापि देवराज समाख्यावद्बोध्या । तथा च प्रबल प्रमाणबाधात् सा साच निष्फलैव महावृक्ष समाख्यावद्भवेत् ॥ ६ ॥

यदि कहो कि, महेश्वर नाम से रुद्र की परता भी माननी चाहिये, सो ठीक नहीं है, क्योंकि वह महेन्द्र नाम की तरह व्यर्थ है । "इदि" धातु, जिससे इन्द्र शब्द बनता है और वह परमेश्वर का बोधक है—इस धातु पाठ से जब शक्र का परम ऐश्वर्य सिद्ध है, तब फिर इन्द्र शब्द के साथ महा शब्द लगाने से क्या विशेषता हुई ? इन्द्र ईश्वर नहीं है यह तो सभी जानते हैं, और उसका जो ऐश्वर्य (वैभव) है वह कर्मानुसार है. जो कि शतमख नाम से ज्ञात होता है । इस प्रकार महादेव नाम भी देवराज नाम की तरह जानना चाहिये । इस लिये कोई प्रबल प्रमाण न होने के कारण महावृक्ष की तरह महेन्द्र महेश, महादेव नाम भी व्यर्थ हैं ॥ ६ ॥

विधिरुद्रयोर्यज्ञपुरुषाराधना लोकाधिकारित्वं भारते स्मर्य्यते । "युग कोटि सहस्राणि विष्णु माराध्यपद्मभूः । पुनस्त्रैलोक्यधातृत्वं प्राप्तवानिति शुश्रुम" इति । मयासृष्टः पुराब्रह्मामद्यज्ञ मयजत् स्वयम् । ततस्तस्य वरान् प्रीतो ददावहमनुत्तमान् ॥ मत्पुत्रत्वञ्च कल्पादौ लोकाध्यक्षत्वमेव चेति । युधिष्ठिर शोकापनोदनेच—विश्वरूपो महादेवः सर्व्वमेधे महाक्रतौ । जुहाव सर्व्वभूतानि स्वयमात्मनमात्मनेति । महादेवः सर्व्वमेधे महात्माहुत्वात्मानं देवदेवो बभूव । विश्वाल्लोंकान् व्याप्टभ्य कीर्तया विराजद्युतातिमान् कृत्तिवासा इति ॥ ७ ॥

महा भारत में ब्रह्मा और शिव का यज्ञ पुरुष (विष्णु) की आराधना द्वारा ही लोकों का अधिपति होना लिखा है:—

"हजार कोटि युग पर्यन्त विष्णु की आराधना करने पर ब्रह्मा ने फिर से त्रिलोकी के धाता पद को प्राप्त किया" ऐसा सुना है। पूर्व में ब्रह्मा को मैंने ही उत्पन्न किया, उसने स्वयं यज्ञ द्वारा मेरा पूजन किया, तब मैंने उसे सर्वोत्तम वर प्रदान किया कि, कल्प के आदि में मेरे पुत्र होकर लोकों के अध्यक्ष बनोगे। युधिष्ठिर के शोक को दूर करते समय कहा है–विश्व रूप महादेव ने सर्वमेध महायज्ञ में समस्त भूतों का एवं स्वयं अपनी आत्मा का हवन किया था। सर्वमेध में अपनी आत्मा को हवन करने वाले महादेव ने देवाधिदेव पद प्राप्त किया और अपनी कीर्ति को समस्त लोकों में फैला कर वे कृतिवास (शिव) प्रकाशमान होकर विराजते हैं ॥ ७ ॥

पशुपतित्वञ्च रुद्रस्य वरायत्वं श्रुतिराह । सोऽब्रवीद्वरं वृणीष्व । अहमेव पशूनामधिपतिरसानीति तस्माद्रुद्रः पशूनामधिपतिरिति ॥ ८ ॥

और रुद्र का पशुपति होना वरदान से प्राप्त है, यह श्रुति कहती है—उस (प्रजापति) ने कहा–तुम वर मांगो । तब कुमार ने कहा कि,—मैं पशुओं का पति हो जाऊं-तब रुद्र पशुओं के पति होगये ॥ ८ ॥

वेदापहारापद्रक्षाच विधेर्हरि कर्तृकै- वेति पाद्मे पठ्यते । विधिवधपापा द्रुद्रो हरिणा मोचित इतिस्मर्य्यते, मात्स्ये रुद्रोक्तिः। "ततः क्रोधपरीतेन संरक्त नयनेनच । वामाङ्गुष्ठ नखाग्रेण छिन्नं तस्य शिरो मयेति ॥ ब्रह्मोक्तिश्च, यस्मादनपराधस्य शिरः छिन्नं त्वया मम । तस्माच्छाप समा- युक्तः कपालीत्वं भविस्यसीति । रुद्रोक्तिश्च, ब्रह्महा कुपितो भूत्वा चरन् तीर्थानिभूतले । ततोऽहं गतवान् देवि हिमवन्तं शिलोच्चयम्॥ तत्र नारायणः श्रीमान् मया भिक्षां प्रया- चितः । ततस्तेनस्वकं पार्श्वं नखाग्रेण विदा- रितम् । महत्य श्रृग्वती धारा तस्य पार्श्वे विनिःसृताः । विष्णु प्रसादात् सुश्रोणि ! कपालं तत् सहस्रधा । स्फुटितं बहुधायातं स्वप्नलब्धधनं यथेति ॥ ६ ॥

पद्म पुराण में लिखा है कि, वेदों के चुराये जाने पर ब्रह्मा की रक्षा हरि भगवान ने ही की थी । ब्रह्म वध के पाप से रुद्र को हरि ने ही बचाया था, यह बात मत्स्य पुराण में रुद्र ने स्वयं कही है-"तब मैंने क्रोध से लाल नेत्र कर बांये अंगुठे के नखाग्र से उस (ब्रह्मा) के मस्तक को काट डाला" । ब्रह्मा ने कहा– "क्योंकि तुमने बिना अपराध के मेरा शिर काटा है, इसलिये मैं शाप देता हूं कि, तुम कापाली (खोपड़ी का खप्पर रखने वाले) हो जाओ ।" रुद्र कहते हैं कि, मैं ब्रह्महत्या से व्याकुल होकर पृथ्वी के तीर्थों में विचरने लगा । हे देवी ! फिर मैं हिमालय पर्वत पर गया - वहां मैंने श्रीमान् नारायण से भिक्षा मांगी । तब उन्होंने नखाग्र से अपनी पसली को चीर दी, उनकी उस पसली से बड़े वेग से एक धार निकली । हे सुश्रोणि ! श्रीविष्णु की कृपा से उस कपाल (खोपड़ी) के स्वप्न में मिले हुये धन की तरह क्षण मात्र में हजारों टुकड़े होगये ॥ ६ ॥

दुर्जय त्रिपुरहेतुकापन्निस्तारो हरिहेतुक स्मर्य्यते भारते । विष्णुरात्मा भगवतो भवस्यामित तेजसः । तस्माद्धनुर्ज्या संस्पर्श स विसेहे महेश्वरः इति । विष्णुधर्म्मेच– त्रिपुरं जघ्नुषः पूर्वं ब्रह्मणा विष्णुपञ्जरं । शङ्करस्य कुरु श्रेष्ठरक्षणाय निरूपितमिति ।

जृम्भणास्त्रेण बाणयुद्धापतितो रक्षितः स्मर्य्यते वैष्णवे–जृम्भणास्त्रेण गोविन्दो जृम्भयामास शङ्करं । ततः प्रणेशुर्दैतेयाः प्रथमाश्च समन्ततः । जृम्भाभिभूतस्तुहरो रथोपस्थ उपाविशत् । न शशाक तदा योद्धुं कृष्णे नाक्लिष्टकर्म्मणेति ॥ १० ॥

महा भारत में लिखा है कि:—दुर्जय त्रिपुरासुर के कारण जो विपद् आई थी, उससे रुद्र की रक्षा श्री हरि ने ही की थी । अमित तेज वाले भगवान भवकी आत्मा विष्णु ही हैं । इससे वे महेश्वर धनुष की डोरी के स्पर्श को सहन कर सके । विष्णुधर्म में भी लिखा है:—हे कुरुश्रेष्ठ ! पूर्व काल में त्रिपुर का जिन्हों ने वध किया था, उन शंकर की रक्षा के निमित्त ब्रह्मा ने विष्णुपंजर स्तोत्र का [illegible] किया था ।

वाणासुर के युद्ध में जृम्भणास्त्र द्वारा आई हुई विपद से भी रुद्र की रक्षा श्रीहरि ने ही की थी—यह विष्णु पुराण में भी लिखा है: श्रीगोविन्द ने जृम्भणास्त्र से शंकर को जृम्भित कर दिया (अर्थात् उन्हें जम्भाई आने लगीं) तब दैत्यों का एवं प्रमथगण का अच्छी तरह विनास किया। हर रथ पर बैठे बैठे जम्भाई लेते रहे, अक्लिष्ट कर्म्मा श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने में समर्थ नहीं हुये ॥ १० ॥

श्रीरामायणे परशुरामोक्तिः, हुङ्कारेण महावाहुस्ताम्भितोऽथ त्रिलोचनः । जृम्भितं तद्धनुर्दृष्ट्वा शैवं विष्णु पराक्रमैः । अधिकं मेनिरेविष्णुं देवाः सर्षिगणास्तदेति। नरसखेन नारायणेन सहयुद्ध्यमानस्तेन संजिहीर्षितोब्रह्मणो प्रवोधितः प्रपत्यातेन संरक्षितः स्मर्य्यते भारते, प्रसादयामास भवो देवं नारायणं प्रभुं । शरणञ्च जगामाद्यं वरेण्यं वरदं हरि मित्यादिना,काल कूटान्निस्तारश्च तत्कीर्तनादितिस्मर्य्यत । अच्युतानन्त गोविन्द मन्त्रमानुष्टुभंपरम्। ॐ नमः संपुटीकृत्य जपन् विषधरो हर इति ॥ ११ ॥

श्री रामायण में परशुरामजी ने कहा है:—हुंकार मात्र से महाबाहु त्रिलोचन जम्भाई लेने लगे। श्री विष्णु के पराक्रम से उनके धनुष को भग्न देखकर, ऋषियों के सहित देवताओंने विष्णु को श्रेष्ठ माना। नर सखा नारायण के साथ युद्ध में प्रवृत्त रुद्र को नारायण ने जब जीतना चाहा, तब ब्रह्मा द्वारा प्रवोधित हो रुद्रने उनकी शरण ली-उन्होंने उनकी रक्षा की, यह महा भारत में लिखा है:--जब भव (शिव) आदि देव श्रेष्ठ वरदाता प्रभु नारायण हरि की शरण भये तब उन्होंने कृपा की। काल कूट (विष) से रक्षा उनके नाम कीर्तन से ही हुई थी ऐसा लिखा है-अच्युत, अनन्त, गोविन्द इस अनुष्टुभ् मन्त्र को ॐ नमः शब्द से संपुटित कर जपने से ही हर विषधर हुए ॥ ११ ॥

सर्वेश्वरादन्ये तु सर्वे ब्रह्मादयः प्रलये विनश्यन्तीति मन्तव्यं । एकोह वै नारायण आसीदित्यादि*श्रवणात् । ब्रह्मादिषु प्रलीनेषु नष्टे लोके चराचरे । आभूत संप्लवे प्राप्ते प्रलीने प्रकृतौ महान् ॥ एकस्तिष्ठति सर्व्वात्मा स तु नारायणः प्रभुरिति भारतात्,

ब्रह्माशम्भुस्तथै वार्कश्चन्द्रमाश्च शतक्रतुः । एवमाद्या स्तथैवान्ये युक्ता वैष्णव तेजसा॥ जगत् कार्य्यावसाने तु वियुज्यन्तेच तेजसा। वितेजसश्चते सर्व्वे पञ्चत्वमुपयान्तिवै ॥

इति विष्णु धर्म्मात् ॥ १२ ॥

सर्वेश्वर (श्रीकृष्ण) से अतिरिक्त ब्रह्मा आदि सभी महा प्रलय के समय विनाश को प्राप्त होते हैं—ऐसा जानना चाहिये, क्यों कि लिखा है—एक नारायण ही रहते हैं । महाभारत में लिखा है—समस्त भूतों के प्रलय के समय चराचर लोकों के नष्ट होने पर ब्रह्मादि महान् प्रकृति में लय होजाते हैं। सबका आत्मा एक मात्र ही रह जाता है - वेही प्रभु नारायण हैं। विष्णुधर्म में लिखा है:—

ब्रह्मा, शम्भु, सूर्य्य, चन्द्रमा और शतक्रतु (इन्द्र) ये सब, और इन से जो अन्य हैं, वे सब वैष्णव तेज से युक्त हैं। जब जगत के कार्य्य का अन्त आता है, तब ये सब उस तेज से अलग हो जाते हैं और तेज हीन होकर सभी पंचत्व को प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

* पाठान्तर: आसीन्नब्रह्मा नेशान इत्यादि ।

प्रकृतिर्यामायाख्याता व्यक्ताव्यक्त स्वरूपिणी ।
पुरुषश्चाप्युभावेतौ लीयते परमात्मनि ॥
परमात्मा च सर्वेषामाधारः पुरुषः परः ।
सविष्णुनामा वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते ॥
इति वैष्णवाच ।

नष्टे लोके द्विपरार्द्धावसाने,
महाभूतेस्वादिभूतंगतेषु ।
व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते,
भवानेकः शिष्यते शेषसंज्ञः ॥
इति श्री भागवताच्च ।

तथाच हरि हेतुकोत्पत्त्यादिभिर्ब्रिध्यादीनामनीशत्वं निर्बाधं सिद्धं, अतएवतद्भक्ति स्तैरनुष्ठीयते ॥ १३ ॥

विष्णु पुराण में लिखा है: माया नाम से विख्यात, व्यक्ताव्यक्त स्वरूपिणी प्रकृति और पुरुष ये दोनों परमात्मा में लय को प्राप्त होते हैं। परमात्मा सबका आधार और परम पुरुष है—उसी को वेद, वेदान्त में विष्णु नाम से कहा गया है।

श्रीमद्भागवत में लिखा है—द्वापरार्द्ध के अन्त में काल की गति के अनुसार लोकों के नष्ट होने पर महाभूत (पृथ्वी आदि) आदिभूत (अहंकार) में प्रवेश करते हैं—आदि भूत व्यक्त (महत्तत्व) में और व्यक्त जब अव्यक्त (प्रकृति) में लय होते हैं, तब शेष नाम वाले केवल आपही बाकी रहते हैं।

इसी से हरि भगवान से ही सब की उत्पत्ती आदि होने के कारण ब्रह्मा आदि का ईश्वर न होना बिना बाधा के सिद्ध हैं, अतएव उन (हरि) की भक्ति वे (ब्रह्मादि) सब करते हैं ॥ १३ ॥

अथापियत्पाद नखावसृष्टं,
जगद्विरिञ्चोपहृतार्हणाम्भः ।
शेषं पुनात्यन्यतमो मुकुन्दात्,
को नाम लोके भगवत्पदार्थः ॥ इति ॥
यच्छौचनिःसृत सरित्प्रवरोदकेन,
तीर्थेन मूर्द्धन्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत ।
इतिच भगवतात् ॥
एकः प्रसारयेत्पादावन्य प्रक्षालयेन्मुदा ।
परस्तु शिरसाधत्ते तेषुकोऽभ्यधिको वदेति ॥
पुराणान्तराच्च ॥
ब्रह्मादयः सुराः सर्व्वे विष्णुमाराध्यतेपुरा ।
स्वं स्वं पदमनुप्राप्ताः केशवस्यप्रसादतः ॥
इति नारसिंहाच्च ॥
तेदेवाः ऋषयश्चैव नाना तनु समाश्रिताः ।
भक्त्या संपूजयन्त्येनं गतिञ्चैषां ददातिस ॥
इति नारायणीयाच्च ॥

यत्तु, "भवाङ्ग पतितं तोयं पवित्रमिति पस्पृशुरिति" शिवाङ्ग स्पर्शाद् गाङ्गाम्भसः पावित्र्यं मन्यन्ते तन्मंद उक्त वाक्येभ्यः तेन शिरसाभृतत्वात् पवित्रमिदमिति विज्ञाय पस्पृशुरिति तदर्थाच्च । हरस्य गात्र संस्पर्शात् पवित्रत्वमुपागतेत्यत्रापि तस्य पावित्र्यं शुद्धि प्रदत्वं प्राप्तेत्यर्थः ॥ १४ ॥

श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्द में लिखा है—ब्रह्मा का दिया हुआ अर्घ्य जल जिनके पद नख से निकल कर, समस्त जगत को पवित्र करता है, संसार में उन मुकुन्द से अधिक भगवान और कौन है ? जिनके चरण प्रक्षालनसे निकले हुए तीर्थ स्वरूप नदी श्रेष्ठोदक (गङ्गाजल) को शिर पर धारण कर शिव शिव हुए हैं।

पुराणान्तर में लिखा है:—एक चरण को फैलाते हैं, दूसरे आनन्द से उन्हें प्रक्षालन करते हैं और तीसरे मस्तक पर धारण करते हैं, तब बताओ इनमें अधिक कौन है ?

नरसिंह पुराण में लिखा है:—पूर्व काल में ब्रह्मा आदि देवताओंने विष्णु भगवान का आराधन किया, तब उन केशव की प्रसन्नता से सबने अपने अपने पद को प्राप्त किया। महा भारत के नारायणी धर्म में लिखा है—उन देवता और ऋषियों ने नाना देह धारण कर भक्ति से भगवान् का पूजन किया-भगवान ने भी उन्हें गति प्रदान की।

"महादेव के अङ्ग से गिरे हुये पवित्र जल को उन्होंने (देवता और ऋषियोंने) स्पर्श किया था" इस वाक्य को देखकर कोई लाग शिव के अंग स्पर्श के कारण गङ्गा की पवित्रता मानते हैं। सो ठीक नहीं है। उक्त वाक्यों के अर्थ से यह ज्ञात होता है कि शिव ने उसे शिर पर धारण किया था, इस लिये उसे पवित्र जानकर स्पर्श किया था। "हर के गात्र स्पर्श से गङ्गा को पवित्रता प्राप्त हुई" यहां भी उनकी पवित्रता और शुद्धि प्रदान करने की शक्ति गङ्गा द्वारा हुई यही अर्थ है ॥ १४ ॥

यत्तु, साम्ब लाभाय हरे रुद्राराधनं, पार्थ विजयाय तत्स्तवनञ्च भारते स्मर्यते, तत्तु नारद्याराधनवल्लीलारूपमेव बोध्यम्। यत्तु, द्रोणपर्वान्ते शत रुद्रीयार्थं रुद्रंव्याचक्षाणो व्यासस्तस्य परम कारणत्वं प्राह तत्खलु तदन्तर्यामि परतया ज्ञेयं, परब्रह्मद्वयाभावात् तद्द्वयस्यानिष्टत्वाच्च ॥ १५ ॥

और जो महाभारत में यह लिखा है कि, साम्ब के लिये हरिने रुद्र का आराधन किया, एवम् अर्जुन की विजय प्राप्ति के लिये स्तव किया, सो इसे नारदादि की आराधना के समान लीलाही जानना चाहिये। और महाभारत के द्रोण पर्व के अन्त में व्यासदेव ने शतरुद्री स्तव में कहे हुये रुद्रशकत से उनका परम कारणत्व कहा है सो उनके (रुद्र के) अन्तर्यामी के सम्बन्ध में जानना चाहिये, क्यों कि परब्रह्म दो नहीं होते उनको दो मानने से अनिष्ट होता है ॥ १५ ॥

तादित्थं हरेः पारतम्ये सिद्धे केषुचित्पुराणेषु विध्यादीनां पारतम्य निशम्य न भ्रमितव्यं। तेषां राजस तामसत्वेन हेयत्वात् ॥ यदुक्तं मात्स्ये:—

संकीर्णास्तामसाश्चैव राजसाः सात्विकास्तथा।
कल्पाश्चतुर्विधाः प्रोक्ता ब्रह्मणो दिवसाहिते॥
यस्मिन् कल्पेतु यत्प्रोक्तं पुराणं ब्रह्मणापुरा।
तस्य तस्य तु महात्म्यं तत्तत्कल्पे विधीयते॥
अग्नेः शिवस्य महात्म्यं तामसेषु प्रकीर्त्यते।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः॥
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणाञ्च निगद्यते।
सात्विकेषुच कल्पेषुमाहात्म्यमधिकं हरेः॥
तेष्वेव योगसंसिद्धा गमिष्यन्ति परांगतिमिति ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीहरि का पारतम्य सिद्ध होता है। किसी किसी पुराण में ब्रह्मा आदि का पारतम्य सुन कर भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये, क्यों कि वे पुराण राजस तामस होने के कारण त्यागने के योग्य है।

जैसा कि मत्स्य पुराण में लिखा है—संकीर्ण, तामस, राजस और सात्विक ये चार प्रकार के कल्प कहे गये हैं। ये ब्रह्मा के दिन कहे जाते हैं। पूर्व काल में ब्रह्मा ने जिस कल्प में जो पुराण कहा है उस उस

का महात्म्य उसी उसी कल्प में विधान किया है। अग्नि और शिव का महात्म्य तामस पुराणों में कहा गया है। राजस पुराणों में अधिकतर ब्रह्मा का महात्म्य जानना चाहिये। संकीर्णों में सरस्वती और पितृयों का कहा है। और सात्विक पुराणों में हरि का ही अधिक महात्म्य कहा है। इन (सात्विक कल्पों) में योग सिद्ध पुरुष परागति को प्राप्त होते हैं॥ १६॥

कौर्म्मेच —

असंख्यातास्तथाकल्पा ब्रह्माविष्णुशिवात्मका:
कथिताहि पुराणेषु मुनिभिः कालचिन्तकैः॥
सात्विकेषुतु कल्पेषु महात्म्यमधिकंहरेः।
तामसेषु शिवस्योक्तं राजसेषु प्रजापते रिति॥
वेद विरोधि स्मृतिनां हेयत्वं मनुराहः—
या वेद बाह्या स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्तानिष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठाहिताःस्मृता इति॥

तदेवं सात्विकानामेव पूराणादीनां प्रमाजनकत्वादुपादेयत्वं तदन्येषान्तु विपर्यासकरत्वादवहेयत्वं सुव्यक्त मिति नतै भ्रमितव्यं सुधियेति॥ १७॥

कूर्म पुराण में लिखा है—काल चिन्तक मुनियों ने पुराणों में ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मक कल्पों को असंख्य बताया है। सात्विक कल्पों में हरि का ही अधिक महात्म्य है।

तामसों में शिव का एवं राजसों में प्रजापति का है। मनुने वेद विरुद्ध स्मृतियों को हेय बतलाया है जो स्मृतियां वेद से बाहर हैं या कुदृष्टि वाली हैं वे सब निष्फल कही गई हैं क्यों कि, परलोक में वे सब तमोनिष्ठा वाली है। इस प्रकार सात्विक पुराणादिकों की प्रामाणिकता सिद्ध होने के कारण उनका उपादेयत्व एवं औरों का भ्रमोत्पादक होने के कारण हेयत्व सिद्ध हो गया, इससे विद्वानों को उनके भ्रम में नहीं आना चाहिये॥ १७॥

तस्यहरेस्तिस्रः शक्तयः सन्ति-पराख्या, क्षेत्रज्ञाख्या मायाख्या चेति।

"परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते,
स्वभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।
प्रधान क्षेत्रज्ञ पतिर्गुणेशः
संसार बंध स्थिति मोक्षहेतु" रिति श्रुतेः।

विष्णु शक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।
अविद्या कर्म्म संज्ञान्या तृतीया शक्ति रिष्यते॥
इति श्री विष्णु पुराणाच्च॥ १८॥

उन हरि भगवान् की तीन शक्तियां हैं—१ परा नाम की, २ क्षेत्रज्ञ नाम की और ३ माया नाम की। श्रुति में लिखा है-उन भगवान की स्वाभाविकी शक्ति ज्ञान, बल, क्रिया नाम से अनेक प्रकार की सुनी जाती है। वे प्रधान (प्रकृति) क्षेत्रज्ञ (जीव) एवं गुणों के ईश हैं। संसार बन्धन, स्थिति और मोक्ष के हेतु हैं। विष्णु पुराण में लिखा है—विष्णु भगवान की एक पराशक्ति है, दूसरी क्षेत्रज्ञ नाम की अपरा शक्ति है और अविद्या कर्म संज्ञावाली तीसरी शक्ति कही गई है॥ १८॥

स च पराख्यशक्तिमद्रूपेण जगन्निमित्तं क्षेत्रज्ञादि शक्तिमद्रूपेण तु तदुपादानञ्च भवति, तदात्मानं स्वयमकुरुतेत्यादि श्रवणात्॥ १९॥

वे (भगवान) पराशक्तियुक्तरूप से जगत के निमित्त कारण एवं क्षेत्रज्ञादिशक्तियुक्तरूप से जगत के उपादान कारण होते हैं। जैसा कि लिखा है:—वह अपने आपको स्वयं ही (जगत् रूप से) उत्पन्न करता भया इत्यादि॥ १९॥

सचदेह देहि भेदशून्यो हरिरात्ममूर्तिर्बोध्यः
सत्पुण्डरीक नयनं मेघाभं वैद्युताम्बरं।
द्विभुजं मौन मुद्राढ्यं वनमालिन मीश्वरम्॥
साक्षात्प्रकृति पुरुषयोरप्यात्मागोपाल-

स्तमेकं गोविन्दं सच्चिदानन्द विग्रहं । अर्द्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैक विग्रह इति श्रुतेः ॥ २० ॥

वे हरि देह देही भेद से रहित आत्ममूर्त्ति हैं—ऐसा जानना चाहिये । श्रुति में लिखा है—उनके कमल के समान नेत्र हैं, मेघ की सी आभा है मौन मुद्रा से युक्त, वनमाला को धारण किये हुये हैं। सब के ईश हैं । एक मात्र साक्षात् गोपाल ही प्रकृति और पुरुष की आत्मा हैं ये गोविन्द सच्चिदानन्द विग्रह हैं । राम अर्ध मात्रात्मक ब्रह्मानन्दैक विग्रह हैं ॥ २० ॥

तस्य गुणाश्च,ज्ञानानन्दादयोऽनन्तास्ततो-नातिरिच्यन्ते, "एकधैवानुद्रष्टव्यं" "नेह नानास्ति किञ्चन"इत्यादि श्रवणात।तथापि विशेषवलात्तद्भेद व्यवहारो भवति ॥ २१ ॥

उनके ज्ञानानन्द आदि गुण अनेक हैं, जो वर्णन नहीं हो सकते। श्रुतियों में ऐसा कहा है कि—"वह एक समय में ही सब में प्रवेश करता है उसके कोई नाना भेद नहीं है तो भी उसमें विशेषता के कारण भेद का व्यवहार होता है ॥ २१ ॥

विशेषश्च भेद-प्रतिनिधिर्भेदाभावेपि तत्कार्य्यं प्रत्याययन् दृष्टः, 'सत्तासती' भेदो भिन्नः' 'कालः सर्व्वदास्तीत्यादौ'। तमन्तरा विशेषण विशेष्य भावादिकं न सम्भवेत्॥२२॥

भेद के अभाव में भी जो भेद का प्रतिनिधि होता है, उसे विशेष कहते हैं। सत्ता अर्थात "है" भेद अर्थात "भिन्नता" काल अर्थात "सब समय" इत्यादि प्रयोगों में उस (विशेष) का कार्य स्पष्ट ही प्रतीत होता है। बिना उसके विशेषण-विशेष्य भाव सम्भव नहीं है ॥ २२ ॥

नच सत्तासती त्यादिधीर्भ्रमः सन् घट इत्यादि वदवाधात्। नचारोपः सिंहो-माणवको नेत्यादिवत् । सत्ता सतीनेति कदाप्यव्यवहारात्। न च सत्तादेः, सत्ता द्यन्तराभावेऽपि स्वभावादेव सती-त्यादि व्यवहारः। तस्यै वेह तच्छब्देनोक्तेः तस्मान्निर्भेदेऽपिहरौ भेद प्रतिनिधिः सोऽभ्युपेयः ॥ २३ ॥

"सत्ता है" इत्यादि ज्ञान बुद्धि का भ्रम नहीं है ! "घट है" इत्यादि के समान बिना वाधा के सिद्धि है। और "बालक सिंह है" इत्यादि के समान आरोप भी नहीं है। "सत्ता अर्थात् है" का न होना ऐसा व्यवहार नहीं होता। जो कहा कि, सत्ता आदि का सत्ता आदि में अन्तर अभाव होने पर भी स्वभाव से ही है, ऐसा व्यवहार होता है, सो ठीक नहीं है-यहां उसी (स्वभाव) की तरह वह विशेष कहा गया है । इस लिये हरि में अभेद होने पर भी भेद प्रतिनिधि वह (विशेष) मानना ही पड़ेगा ॥ २३ ॥

यथोदकं दुर्गेवृष्टं पर्वतेषु विधावति । एवं धर्मान पृथक् पश्यं, स्तानेवानुविधा-वतीति कठश्रुतेः, अत्रहि ब्रह्म धर्मानुक्त्वा तद्भेदो निषिद्धः । नहि भेद सदृशे तस्मिन्न सति, धर्म धर्मि भाव धर्म बहुत्वे भाषितुं युक्ते। न च धर्म्मा नित्यानुवादः श्रुति-नान्येन तेषामप्राप्तेः ॥ २४ ॥

कठ श्रुति में लिखा है—जैसे किलेपर वर्षा हुआ जल पहाड़ों में जाता है, वैसे ही (ब्रह्मगत) धर्मों को जो पृथक् देखता है, वह निम्न गामी होता है। इस श्रुति में ब्रह्म को धर्म कह कर उन के भेद का निषेध किया गया है। उस (ब्रह्म) में भेद सदृश न होता तो, धर्म धर्मि भाव एवं धर्मों का अनेक होना, कुछ भी नहीं कहा जाता। धर्म अनुवाद भी नहीं है; क्यों कि एक श्रुति के अतिरिक्त और प्रमाण भी नहीं हैं ॥ २४ ॥

निर्विशेषवादिनापि शोधितात् त्वं पदार्थाद्वाक्यार्थस्यैक्यस्य भेदो नाभिमतो भेदाभेदौ वा । तथा सति तस्य मिथ्यात्वाद्यापत्तेः ॥ २५ ॥

निर्विशेषवादियों द्वारा शोधित त्वं पद के अर्थ से उत्पन्न वाक्यार्थ की एकता का भेद अथवा भेदाभेद स्वीकार नहीं हो तो, ऐसा करने से उस वाक्यार्थ में मिथ्यात्व दोष आता है ॥ २५ ॥

तत्र विशेषो न चेत् स्वप्रकाशचिद्भानेऽप्यैक्यस्याभानन्तद्भानस्य भेदभ्रमाविरोधित्वेऽप्यैक्यभानस्य तद्विरोधित्वश्चेत्यादि भेद कार्यं तस्य कथं स्यात्? तस्मात् ॥२६॥ ❀

उस (ब्रह्म) में 'विशेष" नहीं है तो, स्वप्रकाश ब्रह्म के प्रकाश में भी ऐक्य का अप्रकाश और स्वप्रकाश ब्रह्म का प्रकाश भेद भ्रम का अविरोधी, एवं ऐक्य भाव भेद का विरोधी है, इत्यादि भेदकार्य्य कैसे सम्भव हो सकते हैं? अतएव ब्रह्म में विशेष मानना ही पड़ेगा ॥ २६ ॥

स च वस्त्वभिन्नः स्वनिर्वाहकश्चेति नानावस्था तस्य तादृक्त्वं धर्मिग्राहक प्रमाण सिद्धं बोध्यं ॥२७॥

वह (विशेष) वस्तु से अभिन्न और अपना प्रकाशक स्वयं ही है, इसमें अनवस्था दोष नहीं है. उसका उस प्रकार धर्मिग्राहक होना प्रमाण सिद्ध मानना ही होगा ॥ २७ ॥

❀पाठान्तर दवस्थाद्युपेयो विशेषः ।

स च परमात्मा हरिरस्मदर्थो बोध्यः अहमात्मागुडाकेशेत्यादिष्वात्माहमर्थयोरभेदेन स्मरणात् । 'सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेत्यादि श्रुतौ' अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परं । पश्चादहं यदेतच्च योवशिष्यते सोऽस्म्यहमिति स्मृतौचावधृत्या च शुद्धात्मनोऽस्मदर्थत्वमुक्तं अतोन्तेऽपि स्थितिवाक् युज्यते ॥२८॥

उस परमात्मा हरि को अस्मद अर्थ का वाच्य जानना चाहिये — जैसा कि "हे अर्जुन! आत्मा मैं ही हूँ" इत्यादि वाक्यों में आत्मा और अहं शब्द के अर्थ का अभेद कहा गया है । "उसने (ब्रह्मने) यह कामना की कि, मैं बहुत होकर उत्पन्न होऊं" इत्यादि श्रुतियों में एवं "सृष्टि से पहले मैं ही था और कोई कार्य कारण नहीं था, सृष्टि होने पर जो विश्व हुआ वह भी मैं हूँ और अन्त में जो कुछ बाकी रहता है, वह भी मैं हूँ," इत्यादि स्मृतियों के कथनानुसार शुद्ध आत्मा का ही अस्मद् अर्थ वाला कहा गया है । इससे अन्त में भी उस (अहंकार) की स्थिति उसी में है ॥ २८ ॥

अतएव प्रपञ्चमायानिरासकता मुक्त प्राप्यता च तस्योक्ता 'मामेवये प्रपद्यन्ते मायामेतान्तरन्तिते' ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरमित्यादौ ।

तस्मादहमर्थः परमात्मा विशुद्धः स एव कर्ता भोक्ता च बोध्यः 'स विश्वकृद्विश्व

कृदात्मयोनि' रेष देवो विश्वकर्मा महात्मा 'सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह-ब्रह्मणा विपश्चितेति श्रुतेः'।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्यु पहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
इतिस्मृतेश्च।

भक्त्याप्रयच्छतीत्युक्ते भक्तेच्छयैव तस्य पूर्णस्यापि बुभुक्षोदयोऽभिमतः तस्य तादृशत्वञ्च 'स्वेच्छामयस्येति' ब्रह्मोक्तेः॥२६॥

इस लिये उस (परमात्मा हरि) को, शरणागत की माया दूर करने वाले एवं मुक्त पुरुष के प्राप्य कहा गया है। "जो मेरी शरण लेता है, वे माया से तर जाते हैं," फिर मुझे तत्व से जान कर मुझ में प्रवेश करते हैं, इत्यादि वाक्यों के अनुसार अहं शब्द का अर्थ शुद्ध परमात्मा ही है, उसी को कर्त्ता भोक्ता जानना चाहिये। श्रुति में लिखा है—"उन्हीं को विश्व का कर्त्ता और भोक्ता जानो" जो विश्व का कर्त्ता (ब्रह्मा) है, वे उसके भी कारण हैं। यही देव विश्वकर्म्मा महात्मा है 'मुक्त जीव सर्व द्रष्ट ब्रह्म के साथ समस्त कामनाओं का उपभोग करता है।

गीता में लिखा है:—पत्र पुष्प फल जल जो मुझे भक्ति से प्रदान करता है, मैं उस शुद्धात्मा का प्रेम से दिया हुआ उपहार भोजन करता हूं। प्रेम से दिया हुआ कहने का तात्पर्य्य यह है कि, उस पूर्ण काम की भोजन की इच्छा भक्त की इच्छा से ही उदय होती है, इसी से ब्रह्माजी ने भी इस प्रकार के ब्रह्म को स्वेच्छामय कहा है॥ २६॥

स च पुरुषोत्तमः क्वचिद्द्विभुजः क्वचिच्चतुर्भुजः क्वचिदष्टभुजश्च पठ्यते। तत्र द्विभुजो यथाऽथर्व मूर्द्धिन्'सत्पुण्डरीकनयनमित्यादि' प्रकृत्या सहितःश्यामः पीतवासा जटाधरः।
द्विभुजः कुण्डली रत्नमाली धीरो धनुर्धरः॥
इति॥

तैत्तरीयकेच—दशहस्तांगुलयो दशपद्याद्वा-वूरुद्वौबाहू आत्मैव पञ्च विंशक इति। रहस्याम्नाये च पाणिभ्यां श्रियं संवहती-त्यादिना। श्री सात्वते च—

नादावसाने गगने देवोऽनन्तः सनातनः।
शान्तः संवित्स्वरूपस्तु भक्तानुग्रहकाम्यया॥
अनौपम्येन वपुषाह्यमूर्तो मूर्त्ततां गतः।
विश्वमाप्यायनकान्त्यापूर्णेन्द्वयुत तुल्यया॥
वरदाभयदेनैव संख चक्राङ्कितेन च।
त्रैलोक्य भृति दक्षेण युक्तपाणिद्वयेन स॥
संकर्षणे च— इति॥
पुरुषोत्तमस्य देवस्य विशुद्ध स्फटिकत्विषः।
समपादस्य तस्यैव ह्येक वक्त्रस्य संस्थितिः॥
वरदाभयहस्तौद्वावपवृत्ताख्य कर्मणि॥३०॥
॥ इति॥

वे पुरुषोत्तम शास्त्रों में कहीं द्विभुज, कहीं चतुर्भुज और कहीं अष्टभुज कहे गये हैं। जैसा कि, अथर्वण के शिरोभाग में—"सुन्दर कमल नयन आदि लिखा है-प्रकृति (श्री सीताजी) के सहित हैं, श्याम वर्ण हैं, पीत वसन हैं, जटाधारी हैं, द्विभुज हैं, कुण्डल रत्नों की माला एवं धनुष को धारण किये हुये हैं, तैत्तरीय श्रुति में लिखा है- दस हाथ की अंगुली दस चरण की अंगुली दो उरु (जंघा) दो बाहू और एक हृदय ये पच्चीस अंग वाले हैं। रहस्य-आम्नाय में लिखा है-दोनों भुजाओं से श्री (लक्ष्मी) को धारण करते हैं इत्यादि, श्री सात्वत तंत्र में लिखा है-

नाद अर्थात् शब्द के समाप्त होने पर आकाश में शान्त एवं ज्ञान स्वरूप सनातन अनन्त देव भक्तों पर अनुग्रह करने की कामना से अमूर्त होकर भी अलौकिक वपु धारण पूर्वक प्रगट हुये। दस सहस्र चन्द्र के समान कान्ति द्वारा विश्व को प्रसन्न करते हुए। वे वर और अभय देने वाली, संख चक्र से अंकित एवं तीनों लोक के धारण में दक्ष दो भुजाओं से युक्त हैं।

संकर्षण संहिता में लिखा है-उन विशुद्ध, स्फटिक के समान कान्ति वाले, समपाद (दो पाद वाले) एक मुख वाले एवं अपवृत्तान्त कर्ण वाले पुरुषोत्तमदेव की वर और अभय मुद्रासे युक्त द्विभुजरूप से स्थिति है।३०।

चतुर्भुजो यथा विष्वक्सेन संहितायाम्—

अप्राकृततनुर्देवो नित्याकृति धरो युवा।
नित्यातीतो जगद्धाता नित्यैर्मुक्तैश्च सेवितः॥
बद्धांजलि पुटैर्हृष्टै निर्मलै निरुपद्रवैः।
चतुर्भुजः श्यामलाङ्गः श्रीभूललिाभिरान्वितः
विमलैर्भूषणै नित्यैर्भूषितो नित्य विग्रहैः।
पञ्चायुधैः सेव्यमानः संख चक्र धरो हरिः॥
॥ इति ॥

श्रीदशमेच—तमद्भुतं बालक मम्बुजेक्षणं
चतुर्भुजं संखगदाद्युदायुधं
श्रीवत्स लक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं—
पीतांबरं सान्द्रपयोदसौभग मिति॥

श्रीगीतासुच—
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते। इति

अष्ट भुजोयथा चतुर्थे—
पीनायताष्टभुज मण्डलं मध्य लक्ष्म्या,
स्पर्द्धच्छ्रिया परिवृतो वनमालयाद्यः।
बर्हिष्मतः पुरुष आह सुतान् प्रपन्नान्,
पर्यर्नन्यनादरुतया सघृणाव लोक॥ इति

आनन्दाख्य संहितायान्तु रूपत्रयमुक्तम्—

स्थूलमष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मञ्चैव चतुर्भुजं।
परन्तुद्विभुजं प्रोक्तं तस्मादेतत्त्रयं यजेत्।३१।

चतुर्भुज रूप जैसा कि विष्वक्सेन संहिता में लिखा है:—जिसका देह अप्राकृत है, जो नित्याकृति धारण करने वाले युवा हैं, धीर हैं, नित्य ही सब से परे हैं, जगत के धाता हैं, चतुर्भुज हैं, श्यामलाङ्ग हैं, श्रीभुलीला से युक्त हैं, नित्य ही विमल आभूषणों से भूषित हैं नित्य विग्रह हैं पञ्चायुधों से सेव्यमान हैं, ऐसे जो शंख चक्र धारी हरि, भगवान हैं, वे बद्धांजलि-प्रसन्न-निर्मल-निपरुद्रव नित्य मुक्तों द्वारा सेवित हैं।

श्रीमद्भागवत के दशमस्कंध में लिखा है:—जिस के कमल के समान नेत्र हैं, संख गदा आदि आयुधों से युक्त चार भुजा हैं, वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह है, गले में कौस्तुभ मणि शोभायमान है, जो पीत वसन धारण किये हुये हैं एवं जिसका वर्ण घनस्याम है, वासुदेव ऐसे अद्भुत बालक का दर्शन करते हुए।

श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है:—हे सहस्रबाहु विश्व मूर्ति ! आप वही चतुर्भुज रूप हो जांय।

अष्टभुज रूप जैसा कि श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्द में लिखा है:—अतिपुष्ट अष्ट भुजाओं के मध्य, लक्ष्मी से स्पर्द्धा करने वाली बनमाला से युक्त, भगवान् आदि पुरुष शरण आये हुये प्राचीन पर्हि के पुत्रों पर कृपा दृष्टि कर उनसे मेघ गंभीर बाणी से कहने लगे।

आनन्द संहिता में तो तीनों रूप ही कहे हैं:—अष्टभुज रूप स्थूल कहा गया है, चतुर्भुज रूप सूक्ष्म कहा गया है और इनसे परे द्विभुज रूप है, अतः इन तीनों रूप का ही यजन करें॥ ३॥

एतानि रूपाणि भगवति वैदूर्यमणिवद्युग पान्नित्याऽविर्भूतानि विभान्ति । तेषु चारुत्वाधिक्यात् कृत्स्नगुण व्यक्तेश्च द्विभुजस्य परत्वमुक्तं ननु वस्त्वन्यत्वमस्ति "नेह नानास्ति किञ्चने" त्यादिवचनात् ।

यक्तुमन्यन्ते परमव्योम्नि नित्योदितश्च चतुर्भुजं रूपं परं द्विभुजादि रूपन्तु शान्तोदितमपरमिति तत्खल्व विचारिताभिधान मेव ।

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः
हानोपादानरहिता नैवप्रकृति जाःक्वचित ।
परमानंदसन्दोहा ज्ञानमात्राश्च सर्वतः,
सर्वे सर्वगुणैः पूर्णाः सर्वदोष विवर्जिता ॥

इति महावराहोक्ति व्याकोपात्

परन्तु द्विभुजमितिकंठोक्ति विरोधान्मायिकद्धान्तं स्पर्शा पत्तेश्च ❀ ॥ भेदहीनेष्वेव तेषु रूपेष्वंशित्वांशत्वादिकं शक्ति व्यक्ति तारतम्यसंव्यपदयमाहुः यदुक्तं वृद्धैः शक्तेर्व्यक्ति स्तथाऽव्यक्ति स्तारतमस्य कारण मिति ॥ ३२ ॥

ये रूप भगवान में वैदूयमणि के समान एक साथ प्रगट होते हैं । इन (रूपों) में सौन्दर्य की अधिकता एवं सम्पूर्ण गुणों के प्रकाश के कारण द्विभुज रूप को ही श्रेष्ठ कहा गया है—कुछ वस्तु मे भेद नहीं है क्यों कि श्रुति में लिखा हैः—उस ब्रह्म में नाना भेद नहीं हैं । यदि कहा जाय कि परव्योम (वैकुण्ठ) में नित्य प्रकाशित चतुर्भुज रूप ही पर हैं, और द्विभुज आदि रूप शान्तोदित अर्थात् अंश रूप से जगत में प्रकाशित होने के कारण अपर है; सो यह अविचार की बात है । यदि रूप में तत्वगत भेद माना जायगा तो महा बाराह पुराण के इन वाक्यों से भेद होगाः—

उस परमात्मा के सभी देह नित्य और शाश्वत हैं, वे नाशवान पदार्थ से नहीं बने हैं—वे कभी प्रकृति से उत्पन्न नहीं होते, वे सभी परमानन्द मय हैं—सब ओर से ज्ञान स्वरूप ही हैं । सभी सब गुणों से पूर्ण एवं सब दोषों से रहित हैं । "द्विभुज रूप को शान्तोदित" अपर रूप कहने से "द्विभुज रूप पर है" इस पूर्वोक्त वाक्य के साथ विरोध होने के कारण मायावाद सिद्धान्त आने का डर है । समस्त रूप भेद हीन होने पर भी उनमें जो अंश अंशी भाव है, वह शक्ति की अभिव्यक्ति के तारतम्य के कारण कहा गया है । जैसा कि पूर्वाचार्यों ने कहा हैः— शक्ति की व्यक्ति और अव्यक्ति (अर्थात् उसका न्यूनाधिक प्रकाश) ही तारतम्य का कारण है ॥ ३२ ॥

स च पुरुषोत्तमः श्रीपतिर्बोध्यः "श्रीश्चते लक्ष्मीश्चपत्न्या विति यजुः श्रुते" कमलापतयेनमः रमामानसहंसाय गोविन्दायानमोनमः रमाधवाय रामायेत्यथवर्ण श्रुतिश्च । पूर्वत्र श्री र्गीदेवी लक्ष्मीस्तु रमादेवीति व्याख्यातारः ॥

ननु 'नेह नानास्ति किञ्चनत्यादि' श्रवणान्न ब्रह्मणिकश्चिल्लक्ष्म्यादिरूपो विशेषः शक्योमन्तु किन्त्वङ्गी कृतश्चायं विशङ्कस्तवमूर्तिकं तत्तादृश्यैवलक्ष्म्या गिराच युज्येते, इति चेद्भ्रान्तमेतत् वह्नेरुष्णतेव स्वरूपाभिन्नापराख्याशक्ति ब्रह्मण्यस्ति "परास्येत्यादि श्रुते" सैवतस्यलक्ष्मी र्गीदेवी चेतिस्वीकार्यं । प्रोच्यते परमेशोयो यः शुद्धोप्युपचारतः ।

❀ पाठान्तर मायिक सिद्धान्त पत्तेश्चः ।

प्रसीदतु सनो विष्णुरात्मा यः सर्वदेहीना-मिति श्रीवैष्णवात ।

'अपरन्त्वक्षरं या सा प्रकृति जड रूपिणी ।
श्रीःपराप्रकृतिःप्रोक्ता चेतना विष्णु संश्रये'॥
॥ इति स्कन्दाच्च ॥

सरस्वतीं नमस्यामि चेतनां हृदि संस्थिताम्।
केशवस्य प्रियां देवीं शुक्लां क्षेम प्रदां नित्या मिति स्कन्दंगी स्तोत्राच्च । इत्थञ्च पूर्व पक्षो निरस्तः ॥ ३३ ॥

उन पुरुषोत्तम को श्रीपतिही जानो जैसा कि यजुर्वेदमें लिखा है–"तुम्हारी श्री और लक्ष्मी दो पत्नी हैं" अथर्व श्रुति में लिखा है—"कमलापति को नमस्कार है" रमा मानसहंस गोविन्द को बारंबार नमस्कार है, रमापति राम को नमस्कार है । पूर्व मंत्र में जो श्री शब्द है, उसकी सरस्वती देवी एवं लक्ष्मी शब्द की रमादेवी व्याख्या की गई है ।

यदि कहो कि, "ब्रह्म में नाना भेद नहीं है" इत्यादि श्रुति वाक्यों के अनुसार ब्रह्म में लक्ष्मी आदि रूप विशेष नहीं माना जा सकता, किंतु शुद्ध चिद् ब्रह्म माया को अंगीकार कर विशुद्ध सत्व मूर्ति हो, तभी उस प्रकार की लक्ष्मी, सरस्वती से युक्त हो सकता है, सो यह विचार भ्रान्त है । क्यों कि अग्नि में उष्णता जैसे अग्नी से अभिन्न है, तैसे ही परब्रह्म की पराशक्ति भी परब्रह्मके स्वरूप से अभिन्न है । जैसा कि श्रुति में लिखा है:—इस (ब्रह्म) की पराशक्ति विविध प्रकार की है । इसाको उसकी लक्ष्मी सरस्वती मानना चाहिये । विष्णु पुराण में लिखा है:–"वे विष्णु हम पर प्रसन्न हों, जो शुद्ध (भेद रहित) होकर भी उपचार से परमा (लक्ष्मी) के ईश कहे जाते हैं, एवं समस्त देह धारियों के आत्मा हैं । स्कंद पुराण में लिखा है—अपर जो अक्षर है, वह जड रूपिणी प्रकृति ही कहाती है । परा प्रकृति ही श्री कहाती है । जो चेतना है और भगवान विष्णु के आश्रय रहती है ।

स्कंद पुराण के सरस्वती स्तोत्र में लिखा है—सब जीवों के हृदय में स्थिता, चैतन्य स्वरूपा, शुक्ल वर्णा, नित्या, मोक्षदायनी, एवं केशव प्रिया सरस्वती देवी को मैं नमस्कार करता हूं । इस प्रकार पूर्व पक्ष का खण्डन होगया ॥ ३३ ॥

ननु 'नेह नानास्ति किञ्चनेति' निर्विशेषत्वमुक्तं, मैवं इह यदास्ति तन्नाना न किन्तु स्वरूपानुवन्ध्येवेति, तत्रैव विशेष प्रत्ययात् श्रीश्चते लक्ष्मीश्चेत्यादिः प्रामाण्याच्च लक्ष्म्या एव रूपान्तरं गीर्देवीति मन्तव्यं संध्या रात्रिः प्रभाभूति र्मेधा श्रद्धा सरस्वतीति श्रीवैष्णवे तस्या विशेषणात् ।किञ्च–ह्लादिनी सन्धिनी संवित्त्वय्येका सर्व संश्रये । ह्लादतापकरी मिश्रात्वयिनोगुण वर्जित इति॥ तत्रैव त्रिवृत्परा कीर्त्यते । तत्र संवित्प्रधाना वृति गीर्देवी । ह्लाद प्रधाना तु लक्ष्मीः अनयोऽपूर्वानुत्तरा नुगुणै र्बोध्या संविदः सुखानुधावन प्रसिद्धेः ॥ ३४ ॥

यदि कहो कि–"उसमें (ब्रह्म में) नानात्व नहीं है" इस मन्त्र में निर्विशेषता कही गई है, सो ठीक नहीं है । मंत्र का अर्थ यह है कि, उस (ब्रह्म) में जो कुछ है वह नाना नहीं है—अर्थात परत्व से भिन्न

नहीं है-किंतु वह उसकी स्वरूपानुसंधि विशेष है। यह बात भी "श्री और लक्ष्मी तेरी पत्नी है" इत्यादि प्रमाणों से उसी में विशेष रूप से प्रतीत होती है, लक्ष्मी का रूपान्तर ही सरस्वती को मानना चाहिये। विष्णु पुराण में संध्या, रात्री, प्रभा, भूति, मेधा, श्रद्धा, सरस्वती ये उस लक्ष्मी के विशेषण कहे गये हैं। उसी में और भी कहा हैः-हे सर्वाश्रय भगवन्! तुम में एक शक्ति (परा शक्ति) ह्लादिनी, संधिनी, और संवित् रूप से है। और सुख दुःख से मिलीहुई (जड़ प्रकृति) तुम में नहीं है, क्यों कि तुम मायिक गुणों से रहित हो। इस प्रकार वहीं त्रिवत् पराप्रकृति कही गई है। इनमें संवित् वृति प्रधाना सरस्वती एवं आल्हाद प्रधाना लक्ष्मी है, इनमें पहली को पिछली के अनुगुण जानना चाहिये, क्यों कि यह वात प्रसिद्ध है कि, संवित (ज्ञान) सुख का ही अनुगमन करता है॥ ३४॥

लक्ष्म्या भगवदभेदादेव तद्वत्तस्या व्याप्तिश्च तत्रैव स्मर्यते-

नित्यैव सा जगन्माता,
विष्णोः श्रीरनपायनी।
यथा सर्वगतो विष्णु,
स्तथैवेयं द्विजोत्तमेति॥

ततोभेदे तु व्याप्तिरियमपीसद्धान्ताघटेत। इत्थश्चास्या जीवकोटित्वं निरस्तं। एषा लक्ष्मीर्हरि वदनन्त गुणा तत्रैवोक्ता ननेवर्णयितुशक्ता गुणान जिह्वापि वेधसः। प्रसीद देवि पद्माक्षि मा स्वांस्त्याक्षीः कदाचनेति॥ ३५॥

लक्ष्मी का भगवान के साथ अभेद होने के कारण उसका उनके समान ही व्यापक होना उसी (विष्णु पुराण) में लिखा है—हे द्विजोत्तम! भगवान विष्णु की अनुपायनी जो लक्ष्मी है, वे नित्य ही जगत माता हैं, जैसे विष्णु सर्व व्यापक है, वैसे ही वे भी हैं। तो भेद में इस व्यापकता का अप सिद्धान्त होता है? इसीलिये इन (लक्ष्मी) का जीव कोटि में होना खण्डन किया गया है। लक्ष्मी हरि के समान अनन्त गुण वाली हैं, यह भी वहीं (विष्णु पुराण) में लिखा हैः—हे देवि पद्माक्षि! तुम प्रसन्न होओ, अपने जनको कभी भी परित्याग मत करो, तुम्हारे गुणों को ब्रह्मा भी अपनी जिह्वा से वर्णन करने में समर्थ नहीं है॥ ३५॥

ते च गुणा मुक्ति दातृत्व हरिवशीकारित्वादयः कतिचित्तत्रैव पठिताः।

आत्मा विद्या च देवित्वं विमुक्ति फल दायनी। कात्वन्या त्वामृते देवि सर्व यज्ञ मयं वपुः॥ अध्यास्ते देव देवस्य योगि चिन्त्यं गदाभृतः। त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयम्॥ विनष्ट प्राय मभवत् त्वयेदानीं समेधितम्। दाराःपुत्रास्तथागारं सुहृद्धान्य धनादिकम्॥ भवत्ये तन्महाभागे नित्यं त्वद्वीक्षणान् नृणाम्। शरीरारोग्य मैश्वर्य मारिपक्ष क्षयः सुखं॥ देवित्व दृष्टि दृष्टानां पुरुषाणां न दुर्लभम्। सत्वेन सत्य शौचाभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः॥ त्यज्यन्ते तेनराः सद्यः सन्त्यक्ता ये त्वयामले। त्वयावलोकिताःसद्यः शीलाद्यै रखिलैर्गुणैः॥ कुलैश्वर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणाअपि। संश्लाघ्यः सगुणी धन्यः सकुलीनःसबुद्धिमान॥सशूरःसच विक्रान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः। सद्यो वैगुण्य मायान्ति शीलाद्याः सकलागुणाः॥ पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णु वल्लभे॥

इत्यादिना हरिवद्बहुरूपेयं सर्वत्र तदानुरूप्येण तमनुयातीति चतत्रैवोक्तं—देवत्वं देव देहेयं मानुषत्वेच मानुषी, विष्णो र्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनु मिति ॥ ३६ ॥

मुक्ति का देना हरि को वश में करना आदि जो गुण हैं, वे भी कुछ कुछ वहीं (वि० पु० में) कहे गये हैं।

हे देवि ! तुम मोक्ष फल देने वाली आत्म विद्या हो। हे देवि ! तुम्हारे अतिरिक्त और ऐसा कौन है जो देव देव गदाधर के उस यज्ञ मय शरीर को जो योगियों का चिन्तनीय है, अधिकार कर निवास करें। हे देवि ! तुमने जब इस समस्त विश्व को परित्याग कर दिया था तब ये नष्ट सा हो गया था अब तुम्हारे द्वारा ही सम्पन्न हुआ है। हे महाभागे ! मनुष्यों को स्त्री पुत्र घर सुहृद धन धान्यादि सर्वदा तुम्हारी दृष्टि से प्राप्त होते हैं । हे देवि ! जिन पुरुषों पर तुम्हारी दृष्टि हो उन्हें निरोग शरीर, ऐश्वर्य, शत्रुनाश, सुख आदि मिलना कठिन नहीं है।

हे अमले ! जिसे तुम त्याग देती हो, उसे सत्व, सत्य, शौच, शील आदि सभी गुण परित्याग कर देतेहैं। और तुम्हारी कृपा दृष्टि हो तो गुणहीन-मनुष्य भी शील अदि समस्त गुणों से एवं कुल ऐश्वर्य्य से संपन्न होजाता है। हे देवि ! जिस पर तुम अपनी दृष्टि डालती हो वही प्रशंसा के योग्य है, वही गुणी है, वही धन्य है, वही कुलीन है, वही बुद्धिमानहै। वही सुर है, वही पराक्रमी है, हे जगतमाता विष्णु वल्लभे ! तुम जिससे मुख मोड लेती हो, उसके शील आदि समस्त गुण दुर्गुणता को प्राप्त हो जाते हैं।

इस प्रकार हरि के समान ही ये बहुरूपा हैं। यह भी वहीं (वि० पु०) में लिखा है—ये (लक्ष्मी) विष्णु भगवान के साथ २ देव देह में देवत्व को एवं मनुष्य देह में मनुष्यत्व को धारण करती है, ये विष्णु की देह के अनुरूप ही अपनी देह कर लेती हैं ॥ ३६ ॥

तेषु सर्वेषु लक्ष्मी रूपेषु राधायाः स्वयं लक्ष्मीत्वं मंतव्यम्। सर्वेषु भगवद्रूपेषु कृष्णस्य स्वयं भगवत्ववत् । पुरुषबोधिन्यामथर्वोपनिषदि— "गोकुलाख्ये माथुर मण्डले" इत्युपक्रम्य "द्वेपार्श्वे चन्द्रावली राधिकाचेत्युक्त्वा यस्या अंशे लक्ष्मी दुर्गादिका शक्ति रित्याभिधानात् ।" निरस्त साम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः 'इति भागवते श्री शुकोक्तेः' । बृहद्गौतमीये च तन्मंत्रकथने—

"देवि कृष्णमयी प्रोक्ता,
राधिका पर देवता ।
सर्व लक्ष्मीमयी सर्व-
कान्तिः सम्मोहिनी परे" ॥

त्युक्तेश्च "एतेचांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वय मिति ।" अष्टमस्तु तयो रासीत् स्वयमेव हरिः किलेतिच श्रीभागवतात् ॥ ३७ ॥

उन समस्त लक्ष्मी रूपों में श्री राधिका को ही स्वयं लक्ष्मी स्वरूप मानना चाहिये, जैसा कि समस्त भगवत् रूपों में श्री कृष्ण ही स्वयं भगवान हैं। अथर्व वेदोपनिषद की पुरुष बोधनी शाखा में लिखा है—,

"मथुरा मण्डल के गोकुल नामक स्थान में" इत्यादि वाक्यों द्वारा आरम्भ कर "दोनों ओर चंद्रावली और राधिका है" यह कह कर "जिसके अंश

से लक्ष्मी दुर्गा आदि शक्ति हैं"—ऐसा कहा है। श्री मद्भागवत में शुकदेवजी ने भी कहा है—जिसके समान या श्रेष्ठ कोई नहीं है, ऐसी आराधना करने वाली राधिका के साथ स्वधाम (गोकुल) में रमण करने वाले भगवान को नमस्कार है।

बृहद्गौतमीय तन्त्र के मन्त्र कथन प्रकरणमें देवी राधिका को कृष्णमयी, परम देवता, सर्व लक्ष्मी-मयी सर्व कान्ति स्वरूपा, सम्मोहनी एवं परा कहा गया है।

और श्री मद्भागवत में लिखा है—ये सब अवतार पुरुष के अंश एवं कला है, और कृष्ण स्वयं भगवान हैं। उन दोनों (देवकी बसुदेव) से अष्टम गर्भ में तो निश्चय स्वय हरि ही हुये ॥ ३७ ॥

वेदान्त स्यमन्तक के सर्वेश्वर तत्व निर्णय नामक द्वितीय किरण का तत्व प्रकाश भाषा भाष्य समाप्त।

तृतीय किरणः ॥

अथ जीवो निरूप्यते। तल्लक्षणं चाणु चैतन्यमाहुःश्रुतिश्च एषोऽणुरात्मा चेतसा-वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा सं. विवेश।

बालाग्रशत भागस्य शतधा कल्पित-स्यच। भागो जीवः स विज्ञेयः सचान-न्त्याय कल्प्यते ॥

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् ॥ तं पीठ-स्थं ये तु यजन्ति विप्रास्तेषां शान्तिः शा-श्वती नेतरेषामिति श्रवणात् ॥

अब जीव का वर्णन करते हैं—उसका लक्षण अणु चैतन्य कहा गया है। जैसा कि श्रुति में लिखा है—यह अणु जीवात्मा चित्त से जाना जाता है, जिसमें प्राण पांच भाग होकर प्रवेश करता है। और भी लिखा है—

बाल के अग्र भाग को शत भाग करके फिर उसके एक भाग को शत भाग करने से जो सूक्ष्म भाग हो, जीव को उसके समान जानना चाहिये और ये अनन्त है।

नित्य चैतन्य एक जो भगवान् हैं, वे अनेक नित्य चेतन जीवों की कामना पूर्ण करते हैं। उन पीठस्थ भगवान का जो ब्राह्मण यजन करते हैं, उन्हीं को शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है, अन्य लोगों को नहीं मिलती ॥ १ ॥

एतेन भ्रान्तं ब्रह्मैवैको जीव स्तदन्ये सर्वे जीवादयस्तद विद्यया कल्पिताः "स्वप्नद्रष्टेव रथा दय" इत्येक जीववादो निरस्तः। नित्य चेतन तया बहूनां जीवानां श्रुतत्वात् ॥२॥

इसके द्वारा-भ्रान्तब्रह्म ही एक जीव है, और सब जीव उस जीव की अविद्या से कल्पित हैं। जैसे "स्वप्न में देखे हुए रथ आदि" इससे एक जीववाद का खण्डन हो गया। क्योंकि नित्य चेतन जीवों को अनेक कहा गया है ॥ २ ॥

स च जीवो नित्यज्ञानगुणकः अवि-नाशी वा अरे अयमात्मा अनुच्छित्ति धर्मेति न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरि लोपो विद्यत इति च श्रुतेः।

अणोरपि तस्य ज्ञान गुणेन सर्वाङ्गेषु व्याप्तिः। 'गुणाद्वालोकवदिति' सूत्रात् । यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः। क्षेत्र क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारतेति भगवद्वाक्याच ॥ ३॥

वह जीव नित्य ज्ञान गुण वाला है । जैसा कि, वृहदारण्यक श्रुति में सुना जाता है, यह आत्मा अविनाशी एवं उच्छेद रहित धर्मवाला है । विज्ञाता के विज्ञान का विलोप नहीं होता है ।

उस (जीव) की ज्ञान गुण के कारण अणु होने पर भी समस्त अङ्ग में व्यापकता है । जैसा कि ब्रह्म सूत्र में लिखा है-" गुण के कारण प्रकाश के समान" इसी को गीता में भगवान् ने और भी स्पष्ट कहा है। जिस प्रकार एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित कर देता है, इसी प्रकार हे भारत ! क्षेत्री (जीव) सम्पूर्ण क्षेत्र (शरीर) को प्रकाशित करता है ॥३॥

अस्मदर्थश्च जीवात्मा बोध्यो विलीनाहङ्कारायां सुषुप्तावहमिति तत्स्वरूप विमर्शात्। तथा च श्रुतिः। सुखमहमस्वाप्सं न किञ्चिदवेदिषमिति ॥ ४ ॥

अस्मद शब्द का अर्थ जीवात्मा ही जानना चाहिये, क्योंकि, सुषुप्ति अवस्था में अहंकार के विलीन होने पर भी ' अहं ' मैं हूं, इस प्रकार से जीव के स्वरूप का अनुभव होता है। जैसा कि श्रुति में लिखा है-' मैं सुख से सोया, मुझे कुछ भी पता नहीं ' ॥४॥

देहादिविलक्षणश्च षड्भावविकारशून्यश्च सः । नात्मा वपुः पार्थिवमिन्द्रियाणि, देवाह्यसुर्वायु जलं हुताशः । मनोऽनुमात्रं धिषणा च सत्व महंकृतिः खं क्षितिरर्थसाम्यमिति । नात्माजजान न मरिष्यति नैधतेऽसौ,नक्षीयते सवन विद्व्यभिचारिणां हि ॥ सर्वत्र शश्वदनपाय्युपलब्धिमात्रं, प्राणो यथेन्द्रियबलेन विकल्पितं सदिति चैकादशात् ॥ ५ ॥

वह (जीव) देहादि से विलक्षण एवं षड् भाव विकार से रहित है। श्रीमद्भागवत के एकादश स्कंध में लिखा है:—

यह आत्मा प्राकृत देह या इन्द्रिय नहीं है, यह देवता या प्राण या वायु या जल या अग्नि भी नहीं है, सूक्ष्म परिमाण मन भी नहीं है, बुद्धि भी नहीं है, प्रकृति भी नहीं है, अहंकार भी नहीं है, आकाश भी नहीं है, पृथ्वी भी नहीं है, एवं किसी प्रकार के पदार्थों का साम्य अर्थात् मेल भी नहीं है। यह न उत्पन्न होता है, न मरता है, न बढ़ता है, न क्षय होता है । देह की बाल युवा आदि अवस्थाओं का द्रष्टा है। सब देहों में अणु रूप से वर्तमान एवं उपलब्धि मात्र अर्थात् ज्ञान स्वरूप है । जिस प्रकार एक ज्ञान इन्द्रिय बल से विकंपित होता है, किन्तु प्राण अविकारी रहता है । उसी प्रकार आत्मा भी अविकारी रहता है ॥ ५ ॥

परमात्मांशश्च सः । ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातन इति भगवद्वाक्यात् ।६।

वह (जीवात्मा) परमात्मा का अंश स्वरूप है, जैसा कि गीता में भगवान् ने कहा है:—जैव जगत में सनातन जीव स्वरूप मेरा ही अंश है ॥ ६ ॥

कर्त्ता भोक्ता च सः विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेऽपि चेति । सोऽश्नुते सर्व्वान्

कामानिति च श्रवणात् । यत्तु प्रकृतिः कर्त्री, भोक्तातु जीव इत्याहुस्तन्मन्दं कर्तृत्वभोक्तृत्वयोरेकनिष्ठत्वात् । यदाह वनपर्वणि सोमकं यमः नान्यः कर्त्तुः फलं राजन्नुपभुंक्ते कदाचनेति ॥ ७ ॥

वही कर्त्ता एवं भोक्ता है । जैसा कि श्रुति में लिखा है- 'विज्ञान (जीवात्मा) यज्ञको विस्तार करता है और कर्म को भी विस्तार करता है । इसीलिये समस्त कामनाओं को भोगता है।' जो लोग प्रकृति को कर्त्ता, और जीव को भोक्ता कहते हैं, सो ठीक नहीं है, क्योंकि, जो कर्त्ता होता है, वही भोक्ता होता है। जैसा कि महाभारत के वनपर्व में लिखा है, सोमक राजा से यमराज कहते हैं—"हे राजन् ! कर्त्ता का फल दूसरा कभी कोई भोग नहीं करता है" ॥ ७ ॥

ननु कर्तृत्वे दुःख सम्बन्धात् न तत्र श्रुतेस्तात्पर्य्यमिति चेन्नैवमेतत् । तथा सतिर्दर्शादिष्वप्य तात्पर्य्यपत्तेः । लीलेच्छाश्वासादेरकरण एव तत् सम्बन्ध वीक्षणाच्चेति ॥ ८ ॥

यदि ऐसा कहो कि, कर्त्ता होने से दुःख का संबंध होगा, इसमें श्रुति की सम्मति नहीं है, सो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, दुःख का सम्बन्ध रहने से यदि श्रुति की सम्मति न हो तो, दर्श पौर्णमासादि कर्मों में भी वेद की सम्मति नहीं हो सकती है। और फिर जो व्यक्ति अपनी इच्छा से ही श्वास रोकता है, अर्थात् प्राणायामादि क्रिया करता है, तो उसमें भी दुःख का सम्बन्ध होने के कारण वह उसका कर्त्ता नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

न च निष्क्रियत्व श्रुत्या कर्तृत्वं जीवस्य बाध्यते । अस्तिभाति विदिधात्वर्थानामात्मानि सत्वेन निष्क्रियत्वासिद्धेः । धात्वर्थोहि क्रियेत्याहुः न च निर्विकारत्वश्रुत्या तस्य तद्बाध्यते। सत्ताभानज्ञानगुणाश्रयत्वेऽपि द्रव्यान्तरतापत्तिरूपस्य विकारस्य तत्राप्रसङ्गात् ॥ यथा संयोगाश्रयत्वेऽपि आकाशे न कोऽपि विकारस्तथा स्थूलक्रियाश्रयत्वेस नात्मनीति द्रष्टव्यं। सुषुप्तावपि सुखज्ञान साक्षित्वरूपं कर्तृत्वमस्तीति पारमार्थिकं जीवस्य तत् ॥९॥

और निष्क्रियत्व प्रतिपादक श्रुति के द्वारा जीव का कर्त्तापन बाधित होता है, यह भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि, सत्तावाचक प्रकाशवाचक एवं ज्ञानवाचक धातुओं का अर्थ आत्मा में विद्यमान रहने के कारण उसकी निष्क्रियता सिद्ध नहीं होती । धातु के अर्थ से क्रिया का ही बोध होता है । यदि कहो कि, जीव को कर्त्ता मानने से वह विकारी हो जायगा और श्रुतिका उसे निर्विकारी कहना व्यर्थ होगा, सो नहीं होगा, क्योंकि, सत्ता प्रकाश एवं ज्ञान गुण उसमें होने पर भी उसमें अन्य द्रव्यों के समान विकार नहीं होता, जिस प्रकार आकाश में संयोग रहने पर भी उसमें कोई विकार नहीं होता, उसी प्रकार स्थूल क्रिया का आश्रय होने पर भी आत्मा में किसी प्रकार का विकार नहीं होता। सुषुप्ति दशा में भी सुख ज्ञान का साक्षी रूप कर्त्तापन रहता है, वह जीव का परमार्थिक है ॥ ९ ॥

तच्चेश्वरायात्तं बोध्यम् । एष एव साधुकर्म्म कारयतीत्यादि श्रुतेः। परात्तु तच्छ्रुतेरिति सूत्राच ॥ १० ॥

जीव के इस कर्त्तापन को ईश्वराधीन ही जानना चाहिये। जैसा कि श्रुति में लिखा है:--ईश्वर ही इस (जीव) से उत्तम कर्म कराता है । ब्रह्म सूत्र में

लिखा है:-उस (जीव) का कर्त्तापन परपुरुष से ही है। यह बात श्रुति से जानी जाती है ॥ १० ॥

स च जीवो भगवद्दासो मन्तव्यः। दासभूतो हरेरेव नान्यस्यैव कदाचनेति पाद्मात् ॥

ननु सर्वेषां जीवानां तद्दासत्वे स्वरूप-सिद्धे निर्विशेषे च सति उपदेशादेर्वैयर्थ्य-मिति चेन्न,तदभिव्यञ्जकत्वेन तस्य सार्थ-क्यात् नहि मथनेन विना दध्निसर्पिररणौ च वह्निराविर्भवेदिति ॥ ११ ॥

इस जीव को भगवान का दास जानना चाहिये। पद्म पुराणमें लिखा है-'यह जीव हरि का ही दास है, अन्य किसी का कदापि नहीं है'। यदि कहो कि, समस्त निर्विशेष जीवों का भगवद्दास होना स्वयं सिद्ध है, तो उपदेश आदि सब व्यर्थ है,सो कहना ठीक नहीं है—क्यों कि वे (उपदेश) तो उस (दासपन) के प्रकाश होने के कारण सब सार्थक हैं। बिना मथे हुए दही से माखन एवं काष्ठ से अग्नि नहीं निकलती (उसी प्रकार जीव का स्वतः सिद्ध भगवद्दासत्व होने पर भी शास्त्रोपदेश बिना प्रकाश नहीं होता) ॥११॥

स च जीवो गुरुपसत्त्या तदवाप्तया हरि-भक्त्या च पुरुषार्थी भवति ॥

यस्यदेवे पराभक्तिर्यथादेवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मन॥

इति॥आचार्यवान् पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्षेऽथ संपतस्ये इति। श्रद्धाभक्तिज्ञानयोगादवैतीति। ततस्तुतं पश्यते निष्कलं ध्यायमान इतिचश्रुतेः॥ तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्। शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युप शमाश्रयम्॥ तत्र भागवतान् धर्म्मान् शिक्षेद्गुर्वात्मदैवत: अमाययानुवृत्यायैस्तुष्येदात्मात्मदो हरि रिति स्मृतेश्च ॥ १२ ॥

यह जीव गुरु की शरणागति द्वारा उनकी दी हुई हरि भक्ति से पुरुषार्थी होता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में लिखा है, जिसकी भगवान में पराभक्ति है, एवं जैसी भगवान में है, वैसे ही गुरु में है, उसी महात्मा को कहे हुए वेदों के अर्थ प्रकाशित होते हैं।

आचार्य्य के चरणाश्रय करने वाले मनुष्य को ही वेदार्थ ज्ञान होता है, एवं प्रारब्ध नाश होने पर मुक्ति मिलती है। श्रद्धा भक्ति ज्ञान योगादि से ही उसे जाना जाता है। कैवल्योपनिषद् में लिखा है—ध्यान करने वाला ही उस अखंड (पूर्ण पुरुष) को देखता है। श्री मद्भागवत के एकादश स्कंध में लिखा है:—" इसलिये जिज्ञासु मनुष्य श्रेष्ठ, उत्तम, वेदार्थ ज्ञाता एवं ब्रह्म में स्थित गुरू की शरण में जाय, और निष्कपट सेवा द्वारा आत्म देवता रूप गुरुदेव से भागवत धर्मों की शिक्षा प्राप्त करे। इससे अपने आपको प्रदान करने वाले हरि भगवान प्रसन्न होते हैं॥ १२॥

सा च भक्तिः शास्त्रज्ञानपूर्विकैवानु-ष्ठेया। तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां प्रकुर्व्वीत ब्राह्मण इति श्रवणात्। ते च जीवा मुक्ता-वपि हरिमुपासते। 'एतत् साम गायन्नास्ते' तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरय इति श्रवणात् ॥ १३ ॥

इस भक्ति का अनुष्ठान शास्त्र ज्ञान पूर्वक ही करना चाहिये, जैसा कि श्रुति में लिखा है—धीर ब्राह्मण उन (भगवान) को जानकर ही भक्ति करे। मुक्त जीव भी हरि की उपासना करते हैं। जैसा कि श्रुति में लिखा है—"वे (मुक्त पुरुष भी) साम गान करते हैं" भगवान् विष्णु के उस परम पद को ज्ञानी लोग सर्वदा दर्शन करते हैं॥ १३॥

इत्थञ्च *तदनुभाविनान्तदसत्वात्तद्रूप-गुणविभुतीनां लावण्य चन्द्रिकात्व प्रसंगः । तदित्थं विभुत्वाणुत्वादि मिथोविरुद्ध शास्त्रैकगम्य नित्यगुण योगादीश्वर जीव-योर्भेदः सार्वदिकः सिद्धः ॥ ॥ १४ ॥

इस प्रकार उन (भगवान) के अनुभव करने वालों की सत्ता सर्वदा रहती है । इसलिये उन (भगवान)की रूप गुण आदि विभूतियों का लावण्य प्रकाश होना सिद्ध है । इसी प्रकार परस्पर विरुद्ध विभुत्व अणुत्व आदि जो शास्त्र द्वारा ही जाने जाते है; इन नित्य गुणों के योग से ईश्वर और जीव का भेद नित्य सिद्ध है ॥ १४ ॥

ननु किमिदमपूर्वमुच्यते, ईशादन्यो जीव इति "त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते तद्योऽहसो सौ यो सौ सोऽहं तत्वमसीति" व्यवहारदशायां । 'यत्रत्वस्य सर्व्वमात्मैवा-भूत्तत् केन कम्पश्येदिति' मोक्षदशायाश्च तयोरभेद श्रवणात् । भेदस्यावस्तुत्वाद्-ग्राही निन्द्यते, "यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' 'यदा ह्येवैष उदर-मन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवतीत्यादि' श्रुतौ ॥ १५ ॥

यदि यह कहो कि, ईश्वर से भिन्न जीव है, यह कैसी अपूर्व बात है-क्यों कि, श्रुति में व्यवहार दशा में लिखा है कि, "जो तुम हो वही मैं हूं"हे भगवन् ! हे देव ! तुम मैं ही हूं, और जो मैं हूं सो ही यह है, वह तू ही है, एवं मोक्ष दशा में भी जब कि सब जीव की आत्मा ही है, तब कौन किसको देखता है, इत्यादि श्रुति वाक्यों में दोनों का अभेद वर्णित है। अवस्तु होने के कारण शास्त्रों में भेद मानने वाले की निन्दा की गई है । "जो कुछ यहां है वही वहां हैं, जो वहां है, वह यहां भी है—जो इस ब्रह्म में नाना अर्थात् भिन्नता देखता है, वह मृत्यु से भी अधिक मृत्युको प्राप्त करता है"। "इस ब्रह्म तत्व में, जो कुछ भी भेद देखता है, उसी को भय होता है" इत्यादि ॥ १५ ॥

नैतच्चतुरस्रम्'द्वासुपर्णा सयुजा सखाया सामानं वृत्तं परिषस्वजाते, तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति पुर्वस्याम्' । यथोदकं शुद्धे शुद्ध मासिक्तं तादृगेव भवति । एवं मुनेर्विजानतः आत्मा भवति गौतम निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति इति । परस्याञ्च तयोर्भेदः श्रवणात् ॥ १६ ॥

(उपरोक्त) प्रतिवाद ठीक नहीं है । क्यों कि, पहली श्रुति में लिखा है कि, दो पक्षी (जीव और ईश्वर) जो परस्पर सखा (साथी) हैं, एक ही साथ वृक्ष (शरीर) में निवास करते हैं, उनमें से एक (जीव) वृक्ष के फल (कर्म फल) को खाता है, अर्थात् भोग करता है । और दूसरा (ईश्वर) साक्षी रूप से प्रकाशित होता है ।

अनन्तर लिखा है—जिस प्रकार शुद्ध जल शुद्ध जल में मिलने से उसके समान हो जाता है । इसी प्रकार हे मुने गौतम ! ज्ञानी की आत्मा शुद्ध (उपाधि रहित) होकर परमात्मा की परम साम्यता को प्राप्त करती है । इन दोनों में भेद ही प्रति पादन किया गया है ॥ १६ ॥

* तदनुभविनां सदासत्वात इति पाठान्तरं ।

भगवताच मुक्तौ भेदः स्मर्य्यते—
"इदं ज्ञानमुपाश्रित्य ममसाधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोऽपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति-
चेत्यादौ" इत्थञ्च "ब्रह्मैव सन्
ब्रह्माप्येति" इत्यादौ ब्रह्म सदृशः सन्नित्ये
वार्थः सुघटस्तत्रैव शब्दस्य सादृश्या देव
इतरथा ब्रह्मभावोत्तरो ब्रह्माप्ययो विरुद्धः
स्यात् । "यदेवेहेत्यादौ" ब्रह्माविर्भाविषु
भेदग्राही निन्द्यते यदाह्येवेत्यादौ ब्रह्मणि-
कपटं प्रतिसिध्यते इतिनकापिक्षतिः ॥१७॥

गीता में भगवान् ने भी मुक्ति दशा में भेद माना है--"इस (आत्म) ज्ञान को प्राप्त करके जीव मेरे समान धर्म वाला हो जाता है, न वह सृष्टि के समय उत्पन्न होता है और न प्रलय के समय मरता है।" इसी प्रकार "ब्रह्म होकर ही ब्रह्म को प्राप्त करता है" इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्म के समान होना ही सुन्दर अर्थ है। इस श्रुति में "एव" शब्द का अर्थ "समान" ही है, अन्यथा ब्रह्म भाव के अनन्तर ब्रह्म को प्राप्त करना विरुद्ध होगा। "यदेवेह" इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्म के आविर्भावों में भेद दर्शी की निन्दा की गई है। "यदाह्येव" इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्म में कपट होने का निषेध किया गया है, इसलिये कोई हानि नहीं है॥१७॥

एवं सति "त्वं वा अहमस्मीत्यादौ"
तयोरभेदः प्रतीतः स खलु तदायत्त
वृत्तिकत्वतद्व्याप्यत्वाभ्यां सङ्गच्छेत । यथा
प्राण संवेदे प्राणायत्त वृत्तिकत्वाद्वागादेः
प्राणरूपता पठ्यते छान्दोग्ये "न वै वाचेन
चक्षूंषि न श्रोत्राणि न मनांसीत्याचक्षते
प्राण इत्येवाचक्षते प्राणा ह्येवै तानि
सर्वाणि भवतीति।" यो यद्व्याप्यः स तद्रूपः
स्मर्यते वैष्णवे-"योऽयं तवागतो देव
समीपं देवता गणः। सत्वमेव जगत्सृष्टा
यतः सर्व गतो भवानिति । गीता सुच-
"सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्व" इति ।
यत्र त्वस्येतपत्र तु मुक्तस्य जीवस्य विग्रहे-
न्द्रियादिकं सर्व भगवत् संकल्पादेव
भवतीत्युच्यते । अन्यथा सर्व मित्येतद्व्या
कुप्येत् ॥ १८ ॥

और "तू ही मैं हूँ" इत्यादि श्रुतियों में जो जीव ईश्वर का अभेद प्रतीत होता है, सो जीव की वृत्ति ईश्वर के आधीन एवं परमित होने के कारण ठीक ही है। जैसा कि प्राण के प्रकरण में वाणी आदि को प्राण के आधीन होने के कारण प्राण रूप ही कहा गया है। छान्दोग्य उपनिषद में लिखा है कि, वाणी, चक्षु, श्रोत्र एवं मन ये आत्मा नहीं हैं, प्राण ही आत्मा कहा जाता है, प्राण ही ये सब हैं, क्यों कि जो जिसके भीतर होता है, वह उसी का रूप होता है। विष्णु पुराण में लिखा है-"हे देव ! तुम्हारे समीप आये हुए देवता सब तुम्हारे ही रूप हैं, क्यों कि, तुम जगत् के सृष्टा एवं सर्वगत हो।" श्री गीता में भी लिखा है कि-"तुम समस्त जगत् में व्यापक हो, इससे यह सब तुम ही हो।" "जहां तो इसका" इत्यादि

श्रुतियों में मुक्त जीव की देह इन्द्रिय आदि सब भगवत् संकल्प से ही होना कहा गया है, नहीं तो "सर्व" शब्द व्यर्थ होता है ॥ १८ ॥

यत्तु वदन्ति "त्वंवा" इत्यादौ जहदजहत्स्वार्थलक्षणया विभुत्वाणुत्वादीन् गुणान् हित्वा चैतन्यमात्रं लक्षणीयमिति। तन्मन्दम्। नित्य गुणानां वाङ्मात्रेण हानासम्भवात् सर्वशब्दावाच्ये लक्षणाया अयोगाच्च। तदवाच्यं खलु त्वया ब्रह्माभ्युपगम्यते ॥ १९ ॥

जो यह कहा जाता है कि–"तुम्हीं" इत्यादि श्रुतियों में जहत्, अजहत् एवं स्वार्थ लक्षण के द्वारा ईश्वर के विभुत्व, सर्वज्ञत्व और जीव के अणुत्व, अल्पज्ञत्व गुणों को त्याग कर केवल चेतनता को ग्रहण किया गया है, सो ठीक नहीं है, क्यों कि, नित्य गुणों को वाणी मात्र से त्यागना असंभव है। और सर्व शब्द के अवाच्य में ब्रह्मलक्षणा का योग भी असंभव है। तुम (मायावादी) तो ब्रह्म को अवाच्य (शब्द का अविषय) बताते हो, तो लक्षणा भी नहीं हो सकती ॥ १९ ॥

ननु "यतोवाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सहेत्यादि" श्रुतिरेव ब्रह्मणस्तथात्वमाह। मैवमेतत् कृत्स्ना वाच्यतायास्तत्राभिधानात्। यदुक्तं श्रीभागवते–'कार्त्स्न्येन नाजोऽप्यभिधातुमीश" इति। अन्यथा 'सर्वे वेदायत्पद मामनन्तीति" श्रुतिः 'सर्वैश्च वेदैरहमेव वेद्य" इति स्मृतिश्च व्याकुप्येत। तत्रैव वाक्ये यत इति अप्राप्येति च विरुध्येत् ॥ २० ॥

यदि कहो कि "जहां से वाणी उसे न पाकर मन के सहित लौट आती है" इत्यादि श्रुतियां ब्रह्म को उसी प्रकार का अर्थात् शब्द का अविषय बताती हैं, सो यह बात नहीं है–वहां तो "संपूर्ण रूप से नहीं जाना जाता" यही तात्पर्य है–जैसा कि, श्री भागवत् में कहा है कि, ब्रह्मा भी जिसे पूर्ण रूप से वर्णन नहीं कर सकते। यदि ऐसा न माना जाय तो, "समस्त वेद जिस के रूप को वर्णन करते हैं" इत्यादि श्रुति एवं "मैं ही समस्त वेदों द्वारा जाना जाता हूं" इत्यादि स्मृतियां व्यर्थ हो जायं। उक्त श्रुति में "यत" और "अप्राप्य" शब्दों में विरोध हो जाय ॥ २० ॥

यत्वविद्या वच्छिन्नमविद्या प्रतिविम्बितं वा ब्रह्मैव जीवः। 'आकाशमेकं हि यथा घटादिषु पृथक् पृथक् भवेत्। तथात्मैको ह्यनेकस्थो जलाधारे ष्विवांशुमान्" इत्यादि श्रुतेः। तद्विज्ञानेनाविद्याविनाशेतु तदद्वैतं सिद्धं घटाद्युपाधिनाशेसत्याकाशाद्य द्वैत वदिति वदन्ति। तदसत्। जडीयाविद्यया चैतन्य राशेश्छेदायोगात् नीरूपस्य विभोः प्रतिविम्बा योगाच्च। अन्यथा वायुदिगादेस्तदापत्तिः। आकाशस्थज्योतिरंशस्य तु तत्राया प्रत्ययो भ्रम एवेति तत्वविदः श्रुतिस्त्वनुवादिनीत्याहु ॥ २१ ॥

यह जो कहा जाता है कि, अविद्या से आवृत या अविद्या में प्रतिविम्बित ब्रह्म हो जीव है–"जैसे कि एक ही आकाश घट आदि में पृथक् पृथक् हो जाता है या एक ही सूर्य अनेक जल पात्रों में प्रतिविम्बित होता है, उसी तरह एक आत्मा अनेक प्रतीत होता है" इत्यादि श्रुतियों में लिखा है। यह भी कहते हैं कि,

उस (ब्रह्म) के ज्ञान से अविद्या के विनाश होने पर वह (ब्रह्म) अद्वैत सिद्ध होता है, जैसे कि घट आदि उपाधि के नाश होने पर आकाश आदि एक ही रहते हैं, सो यह मिथ्या है। जठीय अविद्या के द्वारा चैतन्यघन का विभाग होना और अरूप व्यापक का प्रतिविम्ब होना असम्भव है। यदि ऐसा नहीं है, तो वायु और दिशाओं में भी यही (विभाग और प्रतिविम्ब) मानना पड़ेगा। आकाश में स्थित ज्योति के अंश का जो प्रतिविम्ब रूप से प्रत्यय है वह भ्रम ही हैं, ऐसा तत्ववेत्ता कहते हैं और श्रुति उसका अनुवाद मात्र कहती है ॥ २१ ॥

यत्तु वदन्ति अद्वितीये शुद्ध चैतन्ये तदज्ञानाज्जीवेश्वराभावाध्यासः नभस्वरूपा परिज्ञाना तत्र यथा नीलिमाध्यस्यते तज्ज्ञानेन तस्मिन्नध्यस्तस्य तस्य विनिवृत्तौ तु शुद्धं तदवशिष्यते इति ॥२२ ॥

यह जो कहा जाता है कि, अद्वितीय शुद्ध चैतन्य में उसके अज्ञान से जीव और ईश्वर भाव का अध्यास होता है, जैसे कि आकाश का स्वरूप न जानने से उसमें नीले रङ्ग का अध्यास होता है, जब कि उस (आकाश) के ज्ञान से उस में अध्यस्त जो नील रङ्ग है, उसकी निवृत्ति हो जाती है, तब शुद्ध वही (आकाश) बाकी रहता है ॥ २२ ॥

तदिदं रभसाभिधानमेव । अविषये तस्मिन्नध्यासायोगात, नभसो ज्ञान विषयत्वात् तत्रनीलमाध्यासः सम्भवी । नच तद्वत् शुद्ध चैतन्यं ज्ञानविषयो भवतां तस्मादयत् किञ्चिदेतत्। किञ्च कीदृशं ज्ञानं निवर्त्तकमिष्यते,शुद्ध चैतन्यं वृत्तिरूपम्बा। नाद्यः तस्य नित्यत्वेन नित्यमध्यस्त निवृत्ति प्रसङ्गात् । नापि वृत्तिरूपं तस्य सत्यत्वे द्वैतापत्तो, मिथ्यात्वे कथमध्यस्त निवर्त्तकता । सत्यस्य हि शुक्त्यादि ज्ञानस्य रजताद्यध्यस्तस्य निवर्त्तकता दृष्टा॥२३॥

यह बात बड़ी रहस्य भरी है, क्योंकि, अविषय रूप शुद्ध चैतन्य में अध्यास का होना असम्भव है। आकाश ज्ञान का विषय है, इसलिये उसमें नील रङ्ग का अध्यास होना संभव है, किन्तु आपके मत में (मायावाद में) शुद्ध चैतन्य उस आकाश के समान ज्ञान का विषय नहीं है. अतएव यह यत्किंचित् अर्थात् अनिर्वचनीय है और आप अध्यास को निवृत्त करने वाले ज्ञान को कैसा मानते हैं–वह शुद्ध चैतन्य है या वृत्तिरूप है ? पहिला तो इसलिये नहीं हो सकता कि, उस (ब्रह्म) के नित्य होने से नित्य अध्यास की निवृत्ति कही जाती है। वृत्ति रूप भी नहीं है, क्योंकि वृत्ति को सत्य मानने से द्वैत हो जायगा और यदि मिथ्या है, तो अध्यास को निवृत्त कैसे कर सकता है ? क्योंकि सत्य ही शुक्ति आदि के ज्ञान में रजत आदि के अध्यास की निवृत्ति कारक देखा जाता है ॥ २३ ॥

यत्तु फलवत्यज्ञातेर्थे शास्त्र तात्पर्य वीक्षणात् तादृग भेदस्तत्तात्पर्य गोचरः । वैफल्याज्ज्ञातत्वाच्च भेदस्तद्गोचरो न स्यात् किन्त्वनुवाद एवसः। अद्भयो वा एषः प्रातरुदेति आपः सायं प्रविशतीति वदिति तन्मन्दम् । "पृथगात्मानं प्रेरितारञ्च मत्वा जुष्टस्तत स्तेनामृतत्वमेति । जुष्टं यदा पश्यन्त्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीत शोक इत्यादौ तत्र फल श्रव-

णात्, विरुद्ध धर्मावच्छिन्न प्रतियोगीकः तयालोके तस्याज्ञातत्वाच्च । तेच धर्माः विभुत्वाणुत्वादयः शास्त्रैक गम्या भवन्ति। अभेदस्त्वफलस्तत्र फलानङ्गीकारात् अज्ञातञ्च नरश्रृंगवदसत्वादेव । अभेद बोधिका श्रुतयस्तु तदायत्तवृत्तिकत्व तद्व्याप्यत्वाभ्यां संगमिता एव ॥ २४ ॥

यदि यह कहो कि, फल वाले अज्ञात अर्थ में शास्त्र का तात्पर्य दिखाई देता है, इस लिये उस प्रकार का अभेद ही शास्त्र के तात्पर्य का विषय है, विफलता एवं ज्ञात होने के कारण भेद उसका (शास्त्र का) विषय नहीं है, किन्तु वह अनुवाद मात्र है; जैसे कि कहा जाता है, यह (सूर्य) प्रातः काल जल से उदित होता है, संध्या को जल में प्रवेश करता है। यह कहना ठीक नहीं है, क्यों कि श्रुति में लिखा है कि, जीव जब अपनी आत्मा को एवं प्रेरणा करने वाले (परमात्मा) को पृथक् मान कर उपासना करता है, तभी वह (जीव) उससे (परमात्मा से) मोक्ष को प्राप्त करता है। जीव जब अपने से स्वतन्त्र पृथक् ईश्वर को एवं उसकी महिमा को अवगत होता है, तभी शोक रहित होता है। इत्यादि स्थलों में वहां (उस प्रकार के भेद में) फल (मोक्ष) सुना जाता है और परस्पर विरुद्ध धर्म वाले प्रतियोगीरूप से वह भेद जगत में अज्ञात है। वे सब विभुत्व अणुत्व आदि धर्म केवल शास्त्र द्वारा ही जाने जाते हैं। अभेद तो फल के अंगीकार न करने से विफल और नर श्रृंगवत् सत्ताशून्य होने से अज्ञात है। अभेद को कहने वाली श्रुतियां तो जीव की वृत्तियां ईश्वराधीन होने के कारण और जीव स्वयं व्याप्य होने से संगत ही हैं ॥ २४ ॥

किञ्च भेदो ब्रह्मेतरां ब्रह्मात्मको वाऽ नाद्यः, अभेद हानात् तादितरस्य मिथ्यात्वेन श्रुतिनामतत्वावेदकत्वापत्तेश्च सत्यताच । भेदस्यामथो विरुद्धयोरन्यतर निषेधस्यान्यतर विधिव्याप्तत्वाच्च । न चान्त्यः, ब्रह्मणः स्वप्रकाशतया नित्यासिद्धा श्रोतनां सिद्धसाधनतापत्तेश्च ॥ २५ ॥

अच्छा, अभेद ब्रह्म से पृथक् है या ब्रह्मात्मक ही है ? पहिला तो है नहीं, क्यों कि इससे अभेद की हानि होती है और ब्रह्म से भिन्न वस्तु मिथ्या होने के कारण श्रुतियां असत्य अर्थात् मिथ्या वस्तु की प्रतिपादक ठहरती हैं और भेद सत्य होजाता है, क्यों कि, भेद और अभेद दोनों परस्पर विरुद्ध बातों में से एक का निषेध होने से दूसरे की सिद्धि स्वयं हो जाती है। दूसरा अर्थात् ब्रह्मात्मक भी नहीं है, क्यों कि ब्रह्म के स्वप्रकाश होने से अभेद नित्य सिद्ध है, और उसके प्रतिपादन करने से श्रुतियों को सिद्ध साधनता का दोष लगता है ॥ २५ ॥

अपि च नाभेदस्योपदेशः सिद्धति। उपदेष्टुरनिर्णयात्। तथा, तदुपदेष्टा तत्वज्ञो नवा। आद्योऽद्वितीय मात्मानं विजानत स्तस्य नोपदेश्य भेदहष्टि रिति। नैतं प्रति उपदेशः सम्भवेत् । अन्येऽप्यज्ञत्वात् नात्मज्ञानोपदेष्टत्वम् ॥ २६ ॥

और भी कहते हैं—अभेद का उपदेश सिद्ध नहीं होता, क्योंकि उपदेशक का निश्चय नहीं है और अभेद का जो उपदेशक है, वह तत्व के जानने वाला है या नहीं ? तत्वज्ञ तो उसे कह नहीं सकते, क्योंकि उपदेशक के तत्वज्ञ होने से अखण्ड तत्वज्ञानी उस उपदेशक की उपदेश के योग्य भेद दृष्टि नहीं रहती, और न उसके प्रति उपदेश ही सम्भव है और यदि उपदेशक अज्ञ है, तो वह आत्मज्ञान का उपदेशक नहीं हो सकता॥ २६ ॥

यथाधिगताभेदस्य तस्य वाधितानुवृत्तिरूपामिदं भेददर्शनं मरीचिकावारिबुद्धिवदतो नोपदेशानुपपत्तिरितिचेन्मन्दम्। दृष्टान्तविरोधात् तद्बुद्धिर्हि वाधितानुवर्तमानापि न वर्याहरणे प्रवर्तयेदेवमभेदज्ञानवाधिता भेद दृष्टिरनुवर्तमानापि मिथ्यार्थविषयत्व निश्चयान्नोपदेशे प्रवर्तयेदिति विषयनिदर्शनम् ॥ २७ ॥

यदि कहो कि, यह भेद दर्शन उस अभेदज्ञानि के लिये मरीचिका में बारि बुद्धि के समान वाधितानुवृत्ति रूप है * इसलिये उपदेश असंभव नहीं है, सो यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि यहां दृष्टान्त का विरोध होता है, जिस प्रकार मरीचिका में जो जल बुद्धि है वह वाधित होकर फिर से अनुवृत्ति होने पर भी किसी को उस मरीचिका से जल जाने के लिये प्रवृत्त नहीं करती, इसी प्रकार अभेद ज्ञान के द्वारा भेद दृष्टि वाधित होकर फिर अनुवृत्ता होकर भी मिथ्या विषयत्व के अवधारण के कारण पुनर्वार उपदेश में प्रवृत्त नहीं कराती। यह वाधितानुवृत्ति के विषय का निदर्शन है ॥ २७ ॥

यत्तु शुद्धे चैतन्ये अज्ञानेन कल्पितमिदं विश्वं तज्ज्ञानेन वाध्यते रज्जू भुजंगवत् तेनाद्वैतं सिद्धमेवेति वदन्ति, तदपि निरवधान मेव चोदाक्षमत्वात्। तथाहि केदमज्ञानं ब्रह्मणि जीवे वा ? न प्रथमः स्व प्रकाश चैतन्ये तस्मिंस्तद्योगासम्भवात् तुरीयत्वहानाच्च। न द्वितीयः कल्पनात् पूर्वं जीवभावासिद्धेः ॥ २८ ॥

* वाधितानुवृत्ति का तात्पर्य यह है कि, बालुको पर सूर्य की किरणों के पड़ने से जो जल की भ्रान्ति होती है वह उसके समीप जाने पर बालुका का ज्ञान होकर जल की भ्रान्ति वाधित अर्थात् दूर हो जाती है, किन्तु फिर जब कभी दूर से वही बालुका दिखाई देती है, तभी उस में जल की प्रतीति होने लगती है—दूर की हुई भ्रान्ति पुनः स्मरण हो आती है।

जो यह कहा जाता है कि, शुद्ध चैतन्य में यह विश्व अज्ञान से कल्पित है, उस (शुद्ध चैतन्य) के ज्ञान से अज्ञान दूर हो जाता है; जैसे कि, रज्जु के ज्ञान से सर्प की भ्रान्ति दूर हो जाती है, इससे अद्वैत ही सिद्ध है; सो यह कहना भी पागलपन है, क्यों कि, यह तर्क को नहीं सह सकता। जैसे यहां यह तर्क हो सकता है कि, वह अज्ञान किस में है, ब्रह्म में या जीव में? पहिला तो हो नहीं सकता, क्योंकि स्व प्रकाश चैतन्य में उसका होना असम्भव है और उसकी चतुर्थावस्था की हानि होगी। दूसरा भी नहीं हो सकता, क्यों कि, कल्पना से पहिले जीव भाव ही नहीं है ॥ २८ ॥

अथा ज्ञानं सत्य न वा। नाद्यः अनिवृत्ति प्रसङ्गात्। नाप्यन्त्यः प्रतीति विरहात् नच सदसद्विलक्षणत्वादिष्टासिद्धिः तादृशे प्रमाणाभावात घटादीनां सत्वं खपुष्पादीनामसत्वं धरादीनामेवं देशकालव्यवस्थया सदसत्वमिति प्रकार त्रय सैवानुभवान्नातोऽन्यत् सदसद्विलक्षणमनिर्वचनीयमज्ञानं स्वीकर्तुं शक्यं यत्किञ्चिदेतत् ॥ २९ ॥

अच्छा तो, अज्ञान सत्य है या नहीं? पहिली बात तो नहीं है क्यों कि, यदि सत्य है तो निवृत्त नहीं हो सकता। दूसरी बात अर्थात् मिथ्या भी नहीं है, क्यों कि, "मैं अज्ञ हूँ" इत्यादि प्रतीति का अभाव हो जाता है। फिर, सत्-असत् से विलक्षण कहने से भी इष्ट सिद्धि नहीं होती, क्यों कि, अज्ञान सत् असत् से विलक्षण है, इस में कोई प्रमाण नहीं है। घट पट आदि की सत्ता एवं आकाश कुसुम की असत्ता और घटादिकों का देश काल की व्यवस्था के अनुसार सत्-असत् होना, इन तीन प्रकार के अनुभवों के अतिरिक्त अज्ञान को सत्-असत् से विलक्षण अनिर्वचनीय भी नहीं माना जा सकता॥२९॥

तस्मात् पराख्या शक्तिमता भगवता निमित्तेन,प्रधानादि शक्तिमताच तेनोपादानेन सिद्धमिदं जगत् पारमार्थिक मेव। "सोऽकामयत बहुस्या प्रजायेय," "सतपोऽतप्यत," "स तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत्, यदिदं किञ्चित्कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू यथातथ्यतोऽर्थान व्यदधात्, शाश्वतीभ्यः समाभ्यः" "तदात्मानं स्वयमकुरुते" त्यादि श्रवणात्। "तदेतदक्षयं नित्यं जगन्मुनिवराखिलं। आविर्भाव तिरोभाव जन्म नाश बिकल्पवत् ॥" इति वैष्णवात्। "ब्रह्म सत्यं तपः सत्यं सत्यञ्चैव प्रजापतिः। सत्याज्जातानि भूतानि सत्यं भूतमयं जगदिति" महाभारताच्च। "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" त्यत्रापि बनलीन बिहङ्गादि न्यायेन तदपि जगत् सत्यं सिद्धं। भ्रमवादस्तु सर्वथा नुपपन्नः। "सोऽकामयत" इत्यादि श्रुति व्याकोपात् ॥ ३० ॥

इसलिये परा नाम की शक्ति से युक्त भगवान् के निमित्त कारण होने से एवं प्रधानादि अर्थात् प्रकृति और जीव शक्ति से युक्त भगवान् के उपादान कारण होने से इस जगत् की पारमार्थिकता (सत्यता) सिद्ध है। श्रुतियों में लिखा है—"उसने इच्छा की, मैं बहुत सा हो जाऊँ" "उसने तप किया" "उसने तप से यह जो कुछ है सो सब उत्पन्न किया, वह

कवि (ज्ञानवान्) है, मनीषी (मनन शील) है, परिभू (स्वतः सिद्ध) है, और परम मङ्गल रूप अर्थों को यथावत् विधान करता है" "तब उसने अपने आप को स्वयं उत्पन्न किया" इत्यादि। विष्णुपुराण में लिखा है-"हे मुनिवर ! यह समस्त जगत् अक्षय और नित्य है । जन्म और नाश के विकल्प की तरह इसका अविर्भाव और तिरोभाव होता है ।" महाभारत में भी लिखा है—"ब्रह्म सत्य है, तप सत्य है और प्रजापति भी सत्य है, सत्य से सब भूत उत्पन्न हुए हैं, यह भूतमय जगत् सत्य है ।" श्रुति में यह लिखा है कि, "एक ही अद्वितीय ब्रह्म है" सो यहां पर भी बनलीन विहङ्गमादि न्याय से अर्थात् जिस प्रकार पक्षी बन में लीन हो जाते हैं उसी प्रकार जगत् ब्रह्म में सत्ता सहित लीन होने से भी जगत् सत्य सिद्ध है। और भ्रमवाद तो बिलकुल ही अयुक्त है, क्यों कि, "उसने इच्छा की" इत्यादि श्रुतियां व्यर्थ हो जांयगीं ।

किञ्च। क्व कस्यायं भ्रमः शुद्ध चैतन्ये जीवस्येतिचेन्न । तस्याप्रत्यक्षत्वात् । अध्यारोपेक्ष्याधिष्ठान साक्षात्कारस्तन्नं । नच शुद्धचैतन्यं स्वस्मिन् जगद्रूपेण पश्यति । तस्य नित्यासिद्धस्वरूपज्ञानत्वात् । किञ्च। सादृश्यावलम्बी भ्रमोऽनुमीयते स्थाणुः पुमानित्यादौ । तथाच भ्रमविषयाज्जगतोऽन्यत् पारमार्थिकं सिद्धं। अस्ति हि शुक्ति रजतादन्यत् पारमार्थिकं दृष्टस्थं तदित्यनुपपन्नस्तद्वादः । तस्मादीश्वरादन्यस्तद्वन्नित्य चेतनस्तद्दासो जीवोभवतीति सिद्धम् ॥ ३१ ॥

इति वेदान्त स्यमन्तकं जीव-निरूपणस्तृतीयः किरणः ।

और कहते हैं-यह भ्रम किस को कहां होता है ? यदि कहो कि शुद्ध चैतन्य में जीव को भ्रम है, सो है नहीं, क्यों कि उस (शुद्ध चैतन्य) का प्रत्यक्ष नहीं है । और न शुद्ध चैतन्य अपने में जगत्-रूप से देखता है, क्यों कि उसका नित्यसिद्ध स्वरूप ज्ञान है । और कहते हैं-भ्रम जो होता है वह समानता ही को लेकर होता है जैसे कि स्थाणु वृक्ष के ठूंड) में मनुष्य का भ्रम होता है। इससे भ्रम के विषय (स्थान) से अलग जगत् पारमार्थिक सिद्ध होता है। जैसे कि, सीप से अलग बाजार में मिलने वाली चांदी सत्य है—इससे भ्रववाद सिद्ध नहीं होता, इसलिये ईश्वर से पृथक् उसी के समान नित्य चेतन उसका दास जीव होता है, यह सिद्ध हुआ ॥ ३१ ॥

वेदान्त स्यमन्तक के जीव निरूपण नामक
तृतीय किरण का तत्व प्रकाश
भाषा भाष्य समाप्त हुआ।

चतुर्थ किरणः ।

अथ प्रकृतितत्वं निर्णीयते । सत्वादि गुणत्रयाश्रयों द्रव्यं प्रकृतिर्नित्याच सा । गौरनाद्यन्तवती सा जनित्री भूतभाविनी। सितासिताच रक्ताच सर्वकामदुघा विभोरित्यादि श्रुतेः ॥ त्रिगुणं तज्जगद्योनिरनादि प्रभवाप्ययम् । अचेतानपरार्थाच नित्या सतत विक्रिया । त्रिगुणं कार्मिणां क्षेत्रं प्रकृते रूपमुच्यते इति स्मरणाच्च॥१॥

अब प्रकृति तत्व का निर्णय करते हैं-सत्व, रज, तम, इन तीन गुणों का आश्रय तत्व प्रकृति है और वह नित्या है। जैसा कि श्रुतियों में लिखा है-वह गौ

है, अनादि और अन्त वाली है, उत्पन्न करने वाली है, प्राणियों की रक्षा करने वाली है, उसके श्वेत, कृष्ण, रक्त यह तीन वर्ण हैं, भगवत्-कार्यों को सिद्ध करने वाली है। स्मृतियों में भी लिखा है—वह प्रकृति जगत् की योनि है, अनादि है, एवं उत्पत्तिलय का स्थान है, अचेतना है, परार्था अर्थात् जीव के अर्थ है, नित्या है एवं निरन्तर विकार वाली है। कर्मी जो जीव हैं उनका जो त्रिगुणात्मक क्षेत्र है उसी को प्रकृति का रूप कहते ॥ १ ॥

तत्र प्रकाशादिर्गुणः सत्त्वं । राग दुःखादि हेतु रजः । प्रमादालस्यादिहेतुस्तु तमः एषां साम्येप्रलयः, एकदेहस्थ कफ वात पित्त साम्ये मृत्युरिव । अङ्गाङ्गिभावेन वैषम्ये तु महदादिसर्गः स्यात् । प्रलये स्वरूपः साम्यरूपः परिणामः सर्गेतु विरूपः स इति सतत विक्रियेत्युक्तम् । प्रकृतेरस्याः प्रथमपरिणामादिनात्मन्यनध्यवसाय हेतुः सचत्रिविधः । सात्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महानिति वैष्णवाच ॥२॥

उस (प्रकृति) में जो प्रकाश आदि गुण हैं वह सत्व है, राग-दुःख का कारण रज है एवं प्रमाद-आलस्य का हेतु तम है । जिस प्रकार एक देह में स्थित कफ, वात, पित्त की समानता होने पर मृत्यु हो जाती है उसी प्रकार इन तीनों गुणों की समान-अवस्था होने पर प्रलय हो जाता है। जब इन गुणों में अङ्ग-अङ्गी भाव से विषमता होती है, तब महत् तत्व आदि की सृष्टि होती है । प्रलय की अवस्था में इस (प्रकृति) का स्वरूप साम्य रूप परिणाम होता है, और सृष्टि के समय विकृति परिणाम होता है; इसी से यह निरन्तर विकृति क्रियावान् कहा गया है । इस प्रकृति के प्रथम परिणामादि के द्वारा आत्मा में अनध्यवसाय के कारण जो महत्-तत्व उत्पन्न होता है, वह तीन प्रकार का है । विष्णुपुराण में लिखा है—सात्विक, राजसिक एवं तामसिक भेद से यह तत्व तीन प्रकार का है ॥ २ ॥

तस्मिन् विकारविशेषोऽहङ्कारः आत्मनि देहाहम्भाव हेतु रिति । सच सात्विको राजस्तामसश्चेति त्रिविधः । क्रमाद्वैकारिक-तैजसभूतादि शब्दैश्चाभिधीयते । मध्यमस्तु द्वयोः प्रवर्तकतया सहकारीस्याहुः । सात्विकादहंकारदिन्द्रियाधिष्ठात्र्यों देवता मनश्च । राजसाद्बाह्येन्द्रियाणि दश । तामसात्तु तन्मात्र द्वाराकाशादीनिपञ्चेति एव मेवोक्तमेकादशे—"ततो विकुर्वतो जातो योऽहंकारो विमोहनः वैकारिकस्तैजसश्चतामसश्चेत्यहंत्रिवृत् ॥

उस (महत्तत्व) में विकार विशेष ही अहंकार है, जो आत्मा में देहाभिमान का कारण है । वह (अहंकार) सात्विक, राजस एवं तामस भेद से तीन प्रकार का है । इसको क्रम से वैकारिक, तैजस एवं भूतादि शब्दों से पुकारा जाता है। इनमें जो बीच का है वह दोनों का प्रवर्तक होने के कारण सहकारी कहा जाता है । सात्विक अहंकार से इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता और मन होता है। राजस से बाहर की दस इन्द्रियां होती हैं। और तामस अहंकार से तन्मात्राओं के द्वारा आकाश आदि पंच महाभूत होते हैं । यह बात श्रीमद्भागवत के एकादश स्कंध में लिखी है—"उस विकार प्राप्त महत्तत्व से जीवों को मोहन करने वाला अहंकार उत्पन्न हुआ था।वैकारिक, तैजस और तामस इन तीन वृत्तियों वाला अहंकार ही है।

तन्मात्रेन्द्रियमनसां कारणं चिदचिन्मयः। अर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे तामसादिन्द्रियाणि च ॥ तैजसाद्देवता असन्नेकादश च वैकृतादिति। तामसादर्थः पञ्चभूतलक्षणः। तैजसादिन्द्रियाणिदश । वैकृतादेकादश देवता आसन् मनश्चेत्यर्थः। तृतीये च "महत्तत्वाद्विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्य चोदितात्। क्रियाशक्तिरहंकार त्रिविधः समपद्यत ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्च यतोभवः। मनसश्चेन्द्रियाणाञ्च भूतानां महतामपीति ॥ मनसश्चेति चाद्देवतानां चेतिबोध्यं क्रमादितिच ॥ ३ ॥

जड़चेतनमय ग्रन्थिरूप अहंकार ही तन्मात्रा, इन्द्रिय एवं मन का कारण है । तन्मात्रा के द्वारा तामस अहंकार से पंच महाभूत उत्पन्न हुए हैं; तैजस अहंकार से इन्द्रियां एवं वैकृत अहंकार से ग्यारह देवता उत्पन्न हुए हैं। पंच महाभूत जिसका नाम है, वह अर्थ तमोगुण से उत्पन्न हुआ। तैजस से दस इंद्रियां उत्पन्न हुई । वैकृत से एकादश देवता और मन उत्पन्न हुए । श्रीमद्भागवत् के तृतीय स्कंध में लिखा है—भगवत्-इच्छा से प्रेरित होकर महत्तत्व से क्रियाशक्तिरूप वैकारिक, तैजस एवं तामस भेद से तीन प्रकार का अहंकार उत्पन्न हुआ; जिससे कि मन, इन्द्रियां एवं महाभूत उत्पन्न हुए हैं। मनसश्चेति शब्द में "च" से क्रमशः देवता भी जान लेने चाहिये ॥ ३ ॥

अयमत्र निष्कर्षः। द्विविधं खल्विन्द्रियं अन्तरिन्द्रियंबहिरिन्द्रियंचेति । तत्रान्तरिन्द्रियं मनः सात्विकाहंकारोपादनकं द्रव्यं संकल्प विकल्पहेतुर्हृत्प्रदेशवृत्तिः। तदेवक्वचिदध्यवसायाभिमानचिन्तारूप कार्यभेदाद् बुद्ध्यहंकारचित्त संज्ञांधत्ते । इदं मनो विषय संसर्गे वंधहेतुः। मन एव मनुष्याणा कारणं बन्धमोक्षयोः। अशुद्धं काम संकल्पं शुद्धं काम विवर्जितमिति श्रुतेः। तदित्थं स्मृत्यादि करण मिन्द्रियं मनः सिद्धं॥४॥

सारार्थ यह है कि, इन्द्रियां दो प्रकार की हैं—अन्तर-इन्द्रिय और वहिर-इन्द्रिय। इनमें मन अन्तर-इन्द्रिय है, जो सात्विक अहंकार के उत्पन्न करने वाला द्रव्य है, संकल्प विकल्प का कारण है एवं हृदय प्रदेश का वृत्ति रूप है। यही कभी अध्यवसाय, अभिमान एवं चिंता रूप कार्य भेद से बुद्धि, अहंकार एवं चित्त नाम धारण करता है। यह मन विषय संसर्ग में बन्धन का कारण है। श्रुति में लिखा है—मनुष्यों का मन ही बंधन और मोक्ष का कारण है—कामनाओं के संकल्प से युक्त मन अशुद्ध होता है और कामनाओं से रहित शुद्ध होता है । इस प्रकार मन स्मृति (याद) करने की इंद्रिय हैं, यह सिद्ध हो गया ॥ ४ ॥

राजसाहङ्कारोपादानकं द्रव्यं बहिरिन्द्रियं। तच्चाद्विविधं ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय भेदात्। तत्राद्यं पञ्चविधं श्रोत्रत्वक्चक्षुरसनघ्राणभेदात् । तत्र शब्दमात्रग्राहक मिन्द्रियं श्रोत्रं मनुष्यादीनां कर्णशस्कुल्य-

वाच्छिन्न प्रदेशवृत्ति सर्पाणां तु चक्षुर्वृत्ति। स्पर्शमात्र ग्राहकमिन्द्रियंत्वक् सर्वशरीर वृत्तिः नखकेशादौ प्राणमात्रतारतम्यात् स्पर्शानुपलब्धिः। रूपमात्र ग्राहकामिन्द्रियं चक्षुः कृष्णताराग्रवृत्तिः। रसमात्र ग्राहकमिन्द्रियं रसनं जिह्वाग्रवृत्ति। गंधमात्र ग्रहकमिन्द्रियं घ्राणं नासाग्र वृत्ति॥ ५॥

जिसका राजस अहंकार उपादान है वह द्रव्य वहिर इन्द्रिय कहाता है, यह ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय भेद से दो प्रकार का है। इन में पहिली (ज्ञानेन्द्रिय) श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन एवं घ्राण भेद से पांच प्रकार की हैं। इन में शब्द मात्र को ग्रहण करने वाली इन्द्रिय श्रोत्र है, जो मनुष्यों के कान के छेद के भीतर रहती है, एवं सर्पों के नेत्रों में रहती है। स्पर्श मात्र को ग्रहण करने वाली इन्द्रिय त्वक् है, जो सब शरीर में रहती है और नख, केश, आदि में केवल प्राणों के तार तम्य से स्पर्श की उपलब्धि होती है। रूप मात्र को ग्रहण करने वाली इन्द्रिय चक्षु है, जो नेत्र में काली पुतली के बीच में रहती है। रस मात्र ग्राहक इन्द्रिय रसन है, यह जिह्वा के अग्रभाग में रहती है, गंध मात्र को ग्रहण करने वाली इन्द्रिय घ्राण है, यह नासिका के अग्र भाग में रहती है॥ ५॥

श्रोत्रादीणां पञ्चानामाकाशादीनि पञ्चक्रमेणाप्यायकानि भवन्तीति। भौतिकत्वमेषामुपचर्यते। एवं मनः प्राणवाचांच क्रमात् पृथिव्यप्तेजोभिराप्यायणात् तन्मयत्वं। श्रुतिश्च–अन्नमयंहिसौम्य मनः आपोमयः प्राण तेजोमयी वागिति॥ ६॥

श्रोत्र आदि पांच ज्ञानेन्द्रियों को बढ़ाने वाले क्रमशः आकाश आदि पंच महाभूत हैं, इसी से इनको भौतिक कहा जाता है। इसी प्रकार मन, प्राण और वाणी भी क्रमशः पृथ्वी, अप एवं तेज से बढ़ते हैं, इसी से उनको तन्मय कहा है, जैसा कि, श्रुति में लिखा है–"हे सौम्य! मन अन्नमय, प्राण आपोमय एवं वाणि तेजोमयी हैं॥ ६॥

अन्त्यमपि पञ्चविधं वाक्पाणिपाद पायूपस्थ भेदात्। तत्रवर्णोच्चारणहेतुरिन्द्रियंवाक् हृत्कण्ठादिवृत्तिः। यदुक्तं–'अष्टौस्थानानि वर्णानांमुरः कण्ठः शिरस्तथा। जिह्वामूलञ्चदन्ताश्चनासिकोष्ठौ च तालुचेति'वेदभाष्ये। गवादिष्वदृष्टाभावात् तदभावः। शिल्पादिहेतुरिन्द्रियं पाणिः मनुष्यादीनामङ्गुल्यादि वृत्तिः हस्त्यादिनां तु नासिकाग्रादिवृत्तिः। संचारहेतुरिन्द्रियं पादः मनुष्यादिनामंघ्रि वृत्तिः उरगविहङ्गादीनामुरः पक्षादिवृत्तिः। मलादित्यागहेतुरिन्द्रियं पायुस्तदवयववृत्तिः। आनन्दविशेषहेतुरिन्द्रियंमुपस्थः स च मेहनादिवृत्ति रिति॥ ७॥

अन्त की इन्द्रिय भी वाक्, पाणि, पाद, वायु एवं उपस्थ के भेद से पांच प्रकार की हैं। इन में वर्णोचारण का हेतु वाक् इन्द्रिय है जो हृदय, कण्ठ आदि में रहती है, जैसा कि वेद भाष्य में कहा गया है— वर्णों के आठ स्थान हैं–"उर, कण्ठ, शिर, जिह्वामूल, दन्त, नासिका, ओष्ठ और तालु"। गौ आदि में इन आठों का अभाव होने से उसका भी अभाव है। शिल्प आदि का कारण जो इन्द्रिय है, वह पाणि है, जो मनुष्य के हाथ की उँगलियों में एवं हाथी आदि के सूंड के अग्र भाग में रहती है। संचार का हेतु

पाद इन्द्रिय है जो मनुष्य आदि के पैरों में एवं सर्प पक्षी आदि की छाती और पंखों में रहती है। मल आदि त्याग का हेतु पायु इन्द्रिय हैं जो उसी अंग में रहती है। आनन्द विशेष का हेतु उपस्थ इन्द्रिय है जो मेहन (लिंग) में रहती है ॥ ७ ॥

सात्विकाहंकारादिन्द्रियाधिष्ठात्र्यश्चन्द्रादयश्चतुर्दश देवता भवन्ति । तेषु चन्द्र चतुर्मुख शंकराच्युतैः क्रमात् प्रवर्तितानि मनो बुद्ध्यहंकारचित्तानि संकल्पाध्यवसायाभिमानचिन्ताप्रवर्तयन्ति । दिग्वातार्कवरुणाश्विभिः क्रमात् प्रवर्तितानि श्रोत्रत्वक्चक्षुरसनघ्राणानि शब्दस्पर्श रूपरसगंधान् प्रकाशयन्ति । अग्नीन्द्रोपेन्द्र यमप्रजापतिभिः क्रमात् प्रवर्त्तिता वाक्पाणिपादपायूपस्थावचना दानविहरणोत्सर्गानन्दाननुभावयन्तीति ॥ ८ ॥

सात्विक अहंकार से इन्द्रियों के अधिष्ठाता चंद्रमा आदि चौदह देवता होते हैं। उनमें चंद्रमा, चतुर्मुख, शंकर एवं अच्युत द्वारा क्रम से प्रवर्तित जो मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त हैं, उनसे संकल्प, अध्यवसाय, अभिमान एवं चिन्ता को प्रवृत्त करते हैं। दिशा, वायु, सूर्य, वरुण एवं अश्विनी कुमारों के द्वारा क्रम से प्रवर्तित जो श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन- एवं घ्राण ज्ञानेन्द्रिय हैं, उन से शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध को प्रकाशित करते हैं। अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, यम एवं प्रजापति के द्वारा क्रम से प्रवर्तित जो वाक्, पाणि, पाद, पायु एवं उपस्थ कर्मेन्द्रिय हैं, उन से बोलना, ग्रहण करना, चलना, मलादित्याग करना एवं आनंद अनुभव कराते हैं।

तामसाहंकारात्तु तन्मात्राण्यन्तरीकृत्य पञ्चभूतान्युत्पद्यन्ते । तामसाहंकार भूतवर्गयोरान्तरालिकः परिणामस्तन्मात्र शब्द वाच्योऽविशेषशब्देन च कथ्यते । यथा दुग्धदध्नोरांतरालिकः कलल परिणाम स्तथैव द्रष्टव्यः। भूतवर्गस्तु विशेषशब्देनोक्तः। सूक्ष्मावस्था तन्मात्राणि स्थूलावस्था तु भूतानीति ॥ ६ ॥

तामस अहंकार से तन्मात्राओं को मध्य में रख कर पाँच भूत उत्पन्न होते हैं-तामस अहंकार और पाँच भूत, इन दोनों के बीच में होने वाले परिणाम को तन्मात्रा के नाम से कहा जाता है, जैसे दूध और दही के बीच में परिणाम होना है, जिसको दोनों का कलल (विकार) कहते हैं, वैसे ही इसे जानना चाहिये। भूत वर्ग विशेष शब्द से कहे जाते हैं। सूक्ष्म अवस्था ही तन्मात्रा है एवं स्थूल अवस्था भूत है ॥ ६ ॥

एतां भूतोत्पत्ति प्रक्रियां बहुधा निरूपयन्ति । तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत आकाशाद्वायुरित्यादि श्रुत्यर्थच्छायामवलम्ब्य भूताद्भूतोत्पत्तिरिति के । तदाहुः किन्तदासीदित्यादि सुबाल श्रुतिं, तस्मादहंकारात् पंचतन्मात्राणी तेभ्यो भूतानीति गोपाल श्रुतिंच दृष्ट्वा केचिदेवं वदन्ति । भूतादेरहंकारात् पञ्चापि तन्मात्राण्युत्पद्यन्ते तेभ्यः क्रमात् पञ्चभूतानीति । तां ताश्च श्रुतिं निभाल्य परस्त्वेवं वर्णयंति । भूतादेः शब्दतन्मात्रं तस्मादाकाशः, आकाशात् शब्दस्पर्शत-

न्मात्रं तस्माद्वायुः, वायोः शब्दस्पर्शरूप तन्मात्रं तस्मात्तेजः, तेजसः शब्दस्पर्श रूप रस तन्मात्रं तस्मादापः, अद्भ्यो शब्दस्पर्शरूपरसगंध तन्मात्रं ततः पृथिवीति*॥१०॥

इन भूतों की उत्पत्ति प्रक्रिया को अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। "उस या इस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु" इत्यादि श्रुतियों की छाया का अवलम्बन कर कोई तो भूतों से भूतों की उत्पत्ति कहते हैं। कोई "यह कहो वह कैसा था" इत्यादि सुबलश्रुति एवं "उस अहंकार से पंचतन्मात्रा और उन से पंचभूत हुये" इस गोपाल श्रुति को देख कर ऐसा कहते हैं, तामस अहंकार से पांचों तन्मात्रायें उत्पन्न होती हैं और उन से क्रम से पंचभूत उत्पन्न होते हैं और दूसरे कोई इन श्रुतियों को देख कर इस प्रकार वर्णन करते हैं-तामस अहंकार से शब्द तन्मात्रा उत्पन्न होती है, उस से आकाश होता है, आकाश से शब्द स्पर्श तन्मात्रा होती हैं, उन से वायु उत्पन्न होती है. वायु से शब्द स्पर्श एवं रूप तन्मात्रा होती हैं. उन से तेज उत्पन्न होता है, तेज से शब्द, स्पर्श, रूप एवं रस तन्मात्रा होती हैं, उन से जल उत्पन्न होता है, जल से शब्द स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध तन्मात्रा होती हैं, उन से पृथ्वी उत्पन्न होती है ॥ १० ॥

एषां पञ्चानां लक्षणानि। स्पर्श वत्वेसति विशिष्टस्पर्शशब्दाधारात्व माकाशत्वं। विशिष्ट स्पर्शवत्वेसति रूप शून्यत्वं, अनुष्णाशीतस्पर्शवत्वेसति गंधशून्यत्वं वायुत्वं। उष्णस्पर्शवत्वं भास्वर रूपवत्वं वा तेजस्त्वं। शीतस्पर्शवत्त्वे निर्गन्धत्वे-सति विशिष्ट रसत्वं वाप्त्वं। विशिष्ट गंधवत्वं पृथिवीत्वमिति ॥ ११ ॥

इन पंचभूतों का लक्षण इस प्रकार है-स्पर्श वाला होकर एक विशेष स्पर्श एवं शब्द का आधार आकाश है। विशेष स्पश वाला होकर रूप शून्य होना एवं अनुष्णाशीत (न ठंडा न गरम) स्पर्श वाला होकर गंध रहित होना वायु है। उष्ण स्पर्श वाला या प्रकाश रूप वाला तेज है। शीतस्पर्श वाला गन्ध रहित होकर जो विशेष रस वाला हो, वह जल है और विशेष गन्ध युक्त होना ही पृथ्वी है ॥ ११ ॥

भूतानां पञ्चीकृतत्वात् शब्दादीनां सर्वत्रोपलम्भो नाम ननुपपन्नः। पञ्चीकरणं त्वित्थं बोध्यम्। सर्वेश्वरो हरिः पञ्चापि भूतानि सृष्ट्वा तानि प्रत्येकं द्विधा समं विभज्य तयोः पञ्चकयोरेकं प्रत्येकं चातुर्विध्येन समं विभज्य तेषां चतुर्णां भागान स्व स्व स्थूल भागत्यागेनान्यस्मिन् योजनमिति। यदुक्तं-"विभज्य द्विधापञ्चभूतानि देवस्तदर्धानि पार्श्वद्विभागानि कृत्वा तदन्येषुमुख्येषुतंतं नियुञ्जन् स पञ्चीकृतिं पश्यतिस्मेति ॥ १२ ॥

* केचिदत्र "भूतादेः" शब्दतन्मात्रं तस्मादाकाशः अकाशात् स्पर्श तन्मात्रं तस्माद्वायु, वायो रूपस्तन्मात्र तस्मात्तेज तेजसो रस तन्मात्रं तस्मादापः, अद्भयो गंधतन्मात्रं ततः पृथिवीति पठन्ति।

पंच भूतों का पंचीकृत होने के कारण शब्द आदि की प्राप्ति का सब जगह अभाव नहीं होता। पंचीकरण को इस प्रकार से जानना चाहिये। सर्वेश्वर हरि पंचभूतों की सृष्टि करके उनमें से प्रत्येक के समान चार भाग करके, उनमें से अपने अपने स्थूल भाग को छोड़ कर अन्य भागों को दूसरों में मिलाने को पंचीकृत कहते हैं। जैसा कि कहा गया है—भगवान् पंच भूतों के दो भाग करके पीछे उसके अर्द्ध भाग को विभाग कर दूसरे तत्वों में मिला कर पंचीकृत को देखने लगे ॥ १२ ॥

एभ्यः पञ्चीकृतेभ्यो भूतेभ्यश्चतुर्दश लोकखचितान्यण्डानि सन्तीति। तेषु भूर्भुवः स्वः महर्जनस्तपः सत्याभिधाः सप्तलोकाः उपर्य्युपरि सन्ति। अतलवितल सुतल रसातल तलातल महातल पातालाख्याः सप्तत्वबोधः सन्तीति। तेभ्य एव जरायुजाण्डजस्वेद जोद्भिज्जानिचतुर्विधानि शरीराणि यान्तवर्तिनां जीवानामुत्पद्यन्ते। तेषु मनुष्यपश्वादीनि जरायुजानि, पक्षि पन्नगादीनि अण्डजानि, पृकमशकादीनि स्वेदजानि तरु गुल्मादीनि उद्भिज्जानीति।१३।

इन पंचीकृत भूतों से चतुर्दश लोकयुक्त ब्रह्माण्ड-समूह उत्पन्न होते हैं। उनमें भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यः, ये क्रमशः ऊपर के लोक हैं। अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताल नाम के सात लोक नीचे के हैं। इन ब्रह्माण्डों के अन्तर्गत रहने वाले जीवों के जरायुज, अंडज, स्वेदज और उद्भिज ये चार प्रकार के शरीर उन्हीं पंचीकृत महाभूतों से उत्पन्न होते हैं। उनमें मनुष्य, पशु आदि जरायुज हैं। पक्षी, सर्प आदि अंडज हैं। जोक, मच्छर आदि स्वेदज हैं एवं वृक्ष, लता आदि उद्भिज हैं ॥ १३ ॥

इह दिक् पृथक् द्रव्यं न कल्प्यते। सूर्य्य परिस्पन्दनादिना आकाशस्यैव प्राच्यादिरूपतासिद्धेः। दिक् सृष्टिस्त्वन्तरिक्षादि सृष्टिवत सिध्यति ॥ १४ ॥

यहां दिशा को अलग द्रव्य नहीं मानना चाहिये, सूर्य्य की गति के अनुसार आकाश को ही पूर्व आदि दिशा रूप से कहा जाता है। शास्त्रों में दिशा की जो सृष्टि कही गई है, वह अन्तरिक्ष सृष्टि की तरह ही सिद्ध है ॥ १४ ॥

प्राणो न पृथक् तत्वं। अवस्थान्तरापन्नस्य वायोरेवतत्वेन सिद्धेः। स पञ्चविधः प्राणापानसमानोदानव्यानभेदात् ॥

महदादीनि पृथिव्यन्तानि तत्वानि समष्टिस्तेष्वेकदेशोपदानेन क्रियमाणानि कार्य्याणि तु व्यष्टिरुच्यते ॥ १५ ॥

प्राण कोई अलग तत्व नहीं है। यह वायु की ही दूसरी अवस्था है। यह प्राण, अपान, समान, उदान भेद से पांच प्रकार का है।

महत्तत्व से लेकर पृथिवी तक समष्टि कहाती है, इस में एक देशव्यापी जो कार्य्य होता है, उसे व्यष्टि कहते हैं ॥ १५ ॥

अपरे तु अष्टौ प्रकृतयः षोडशविकारा इति। श्रुत्यनुसारेण भूतादेः शब्दतन्मात्रं तस्मादाकाशः स्पर्शतन्मात्रं चोत्पद्यते, स्पर्श तन्मात्राद्वायुः रूप तन्मात्रं च, रूप तन्मात्रात्तेजो, रसतन्मात्रश्च, रसतन्मात्रा-

दापोगन्धतन्मात्रश्च, सहैवोत्पद्यते, गन्धतन्मात्राद्भूमि रितिविर्णयन्ति। एष्वाकाशादिषु पञ्चसु शब्द स्पर्शरूपरसगन्धाः पञ्च गुणा यथोत्तरमेकैकाऽधिक्ये न व्यज्यन्ते॥ तत्राकाशे शब्द एकः, वायौशब्द स्पर्शौ द्वौ तेजसि रूपान्तास्त्रयः, अप्सुरसान्ताश्चत्वार, पृथिव्यांतु गन्धान्ताः पञ्चेति। इह तन्मात्राणां विषयाणा समान नामत्व श्रवणादभेदो न शक्यः। पूर्वेषां भूतकारणत्वेन परेषां भूत धर्म्मत्वेन भेदात्। तदित्थं प्रकृतिमहदहङ्कारैकादशेन्द्रियतन्मात्रपञ्चक भेदेन चतुर्विंशति तत्वानि वर्णितानि॥ १६

दूसरे कोई "आठ प्रकार की प्रकृति और सोलह विकारों को श्रुति के अनुसार कहते हैं कि— पंच भूतों की शब्द तन्मात्रा से आकाश और स्पर्श तन्मात्रा उत्पन्न होती है, स्पर्श तन्मात्रा से वायु और रूप तन्मात्रा उत्पन्न होती है, रूप तन्मात्रा से तेज और रस तन्मात्रा उत्पन्न होती है, रस तन्मात्रा से जल और गन्ध तन्मात्रा उत्पन्न होती है, एवं गन्ध तन्मात्रा से पृथिवी उत्पन्न होती है। इन आकाश आदि पांच महाभूतों में शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध ये पांच गुण एक से दूसरे में अधिक प्रकट होते हैं। जैसे कि आकाश में एक शब्द गुण है, वायु में शब्द स्पर्श दो हैं, तेज में शब्द, स्पर्श और रूप ये तीन हैं, जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये चार हैं, एवं पृथिवी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पांच हैं। यहां पर तन्मात्रा और विषय, यह सब का समान नाम सुन कर, इन में अभेद की शंका नहीं करनी चाहिये क्यों कि, पहिलों में भूत कारण है एवं पिछलों में भूत धर्म है। इस प्रकार प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, ग्यारह इन्द्रियां, पांच तन्मात्रा एवं पांच महाभूत ये चौबीस तत्व वर्णन किये गये हैं॥ १६॥

एषु प्रकृत्यादि त्रिकंभूतपञ्चकञ्च स्थूलदेहस्योपादानं। इन्द्रियानि तु भूषणार्पितरत्नानीव तदाक्रम्य तिष्ठन्ति। पञ्चतन्मात्राण्येकादशेन्द्रियाणि प्राणश्च सूक्ष्मदेहस्योपादानमिति व्याख्यातारः॥१७॥

विद्वान लोग कहते हैं कि, इन में प्रकृति आदि और पांच महाभूत ये स्थूल देह के उपादान कारण हैं और देह में इन्द्रियां आभूषणों में लगे हुए रत्नों के समान रहती हैं। पांच तन्मात्रा ग्यारह इन्द्रियां और पांच प्राण ये सूक्ष्म देह के उपादान कारण हैं।

शरीरत्वं हि चेतनं प्रति नियमेनाधेयत्वं विधेयत्वं शेषत्वञ्च भोगायतनं चेष्टाश्रयो वा शरीरमित्यादि लक्षणन्तु दुष्ट पत्नी शरीरादावति व्याप्तेः। इह प्रकृत्यादेरुत्पद्यमानं महदादि न द्रव्यान्तरं। न हि मृत्पिण्डादुत्पद्यमानं घटादिकमर्थान्तरमुपलभ्यते किं त्ववस्थान्तर मेव तत्रोत्पदस्ते, ताव तैव नाम संख्या व्यवहारादि भेद सिद्धिः। नान्यथा सेनावनराश्यादिव्यवहारःसिध्येत्। तस्मादेकस्मिन द्रव्ये कारणकार्ये द्वे अवस्थे ते च मिथो भिन्ने द्रव्यत्वभिन्ने भवतः। तन्तुपटात्मकं मिथो भिन्नं द्रव्यमिति तार्किका मन्यन्ते तन्न, अनुपलम्भादुन्मानद्वै गुण्यापत्तेश्च।

भेदाभेदामिति सांख्याः प्राहुः । तच्च ना विरोधात् तस्मादभिन्नमेव कारण-त्कार्य्य मिति ॥ १८ ॥

इति वेदान्त स्यमन्तके प्रकृतितत्व निरूपण चतुर्थः किरणः ।

शरीरत्व ही चेतन के प्रति नियम से आधेय, विधेय एवं शेष है। भोग का आय, तन या चेष्टा का आश्रय शरीर का लक्षण करना ठीक नहीं है, क्यों कि, पत्नी के शरीर आदि में इसकी अति व्याप्ति हो जायगी। यहां प्रकृति आदि से उत्पन्न महत्तत्व आदि पृथक् द्रव्य नहीं हैं। मृत्पिका से उत्पन्न घट आदि पृथक् वस्तु नहीं प्रतीत होती, वह तो उसी की अवस्थान्तर मात्र है। इसी से नाम, संख्या आदि व्यवहार भेद सिद्ध है। अन्यथा सेना, बन-राशि आदि व्यवहार सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिये एक ही द्रव्य में कारण और कार्य ये दो अवस्था होती हैं, तार्किक लोगों का जो मत है कि, कार्य कारण दोनों परस्पर में भिन्न द्रव्य हैं; जैसे-तन्तु और पट दोनों भिन्न हैं, सो ठीक नहीं है, क्यों कि, इससे उपलब्धि विरोध परिमाण में द्विगुण दोष हो जाता है। सांख्य मतवादी कार्य कारण में भेदाभेद बताते हैं सो ठीक नहीं है, क्यों कि, दोनों में विरोध है, इसलिये कारण से कार्य अभिन्न है।

वेदान्त स्यमन्तक के प्रकृति तत्व निरूपण नामक चतुर्थ किरण का तत्वप्रकाश भाषाभाष्य समाप्त हुआ।

पञ्चमः किरणः ।

अथ कालतत्व निरूपणम् ॥ त्रिगुणशून्यो जडो द्रव्यविशेषः कालः । स हि भूतभाविष्यद्वर्त्तमानयुगपच्चिरक्षिप्र प्रादि-व्यवहारस्य सर्ग प्रलययोश्च हेतुः क्षणादि परार्द्धान्तश्चक्रवत् परिवर्त्तमानो वर्ण्यते। तत् सिद्धिस्तु ज्ञः कालकालो गुणी सर्व विद्यः । योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबन्धो चेष्टामाहु श्चेष्टते येन विश्वं । निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयांस्तन्त्वीशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥ कालचक्रं जगच्चक्रमित्यादि श्रुतिः स्मृतिश्च । नित्योविभुश्चैषः सदेव सौम्येदमग्र आसीदित्यादिषु सर्गात् प्रागपि तस्य सत्वावगमात् । सर्व्वत्र कार्य्योपलम्भाच्च यदुक्तं ।

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यत्र कालो न भासत इति ॥ सर्वं नियामकोऽप्ययं परमात्मना नियम्यो भवति । ज्ञः कालः काल इति श्रवणात् त्व चेष्टा त्व स्मरणाच्च । अत स्तन्नित्य विभूतौ नास्य प्रभावः । नयत्र कालो जगतां परः प्रभुः, कुतोऽनुदेवा जगतां च ईशिरे इत्यादि स्मृतेः ॥ १ ॥

इति वेदान्त स्यमन्तके कालतत्व निरूपणः पञ्चमः किरणः ।

अब कालतत्व निरूपण करते हैं, तीन गुणों से रहित जड़ीय द्रव्य विशेष का नाम काल है। यह काल भूत, भविष्यत्, वर्तमान, युगपत्, चिर, क्षिप्र आदि व्यवहार का एवं सृष्टि के प्रकार का कारण, क्षण से लेकर परार्द्ध तक चक्र के समान घूमता रहता है, ऐसा शास्त्र में कहा है। श्रुति में

लिखा है-वह ज्ञाता है और काल का काल है, गुणी है, एवं सर्व विद्याओं से युक्त है। श्रीभागवत में लिखा है—हे विश्वबन्धो ! यह जो काल है, जिससे यह विश्व नियमित होता है, जो निमेष से लेकर महावत्सर पर्यन्त है, वह काल आप ही की चेष्टा है, ऐसा ज्ञानी लोग कहते हैं, हम उन्हीं मङ्गलनिकेतन ईश्वर की शरण लेते हैं । "काल चक्र, जाचक्र" इत्यादि इत्यादि श्रुति स्मृति हैं । यह काल नित्य और विभु है । श्रुति में लिखा है--"हे सौम्य ! इस विश्व सृष्टि से पूर्व एक सत् ही था" इससे सृष्टि के पहले भी काल की सत्ता पाई जाती है और सभी कार्यों में काल का अस्तित्व उपलब्ध होता है-जैसा कि लिखा है—

"संसार में ऐसी कोई प्रतीति नहीं है, जिस में काल भासित न होता हो"

यह काल सब का नियामक है एवं परमात्मा द्वारा इसका नियमन होता है, जैसा कि ऊपर कहा है-वह ज्ञाता है, काल का काल है, काल उसकी चेष्टा है । अतः भगवान् की नित्य विभूति में इस (काल) का प्रभाव नहीं है, जैसा कि स्मृति में लिखा है—"जगत् का श्रेष्ठ नियामक काल वहां नहीं है" ॥ १ ॥

वेदान्त स्यमन्तक के काल तत्व निरूपण नामक पञ्चम किरण का तत्वप्रकाश भाषाभाष्य समाप्त हुआ ।

षष्ट किरणः ।

अथ कर्म्म निरूप्यते ॥ तच्च क्रिया रूपं कृतिसाध्य मपि कृति मदनादि सिद्ध-बीजाङ्कुरादिवदनादि सिद्ध मुक्तम् । "न कर्म्मा विभागादिति चेन्न अना दित्वा-दिति" । तत् खल्व शुभं शुभञ्चेति द्विभेदं । वेदेन निषिद्धं नरकाद्यनिष्टसाधनं ब्राह्मण-हननाद्यशुभं, तेन विहित्तं काम्यदि तु शुभं । तत्रस्वर्गदीष्टसाधनं ज्योतिष्टोमादि काम्यं । अकृते प्रत्यवाय जनकं सन्ध्यो-पासनाऽग्निहोत्रादि नित्यं । पुत्र जन्माद्य-नुबन्धि जातेष्ट्यादि नैमित्तिकं । दुरित-क्षयकंर चान्द्रायणादि प्रायश्चित्त मिति शुभं बहु विधं । एषु निषिद्ध मिव काम्य-ञ्च मुमुक्षोर्हेयमेव मुक्ति प्रतिबन्धिफल-त्वात् ! नित्यादिकन्तु चित्तशुद्धिकरत्वात् तेनानुष्ठेय मेव ॥ १ ॥

अब कर्म का निरूपण करते हैं-वह क्रिया रूप है । कर्म कृतिसाध्य होकर भी अनादि सिद्ध बीजाङ्कुर के समान अनादि सिद्ध कहा गया है । वेदान्त सूत्र में लिखा है—"यदि कहो कि कर्म का विभाग नहीं था, सो ठीक नहीं, क्योंकि, यह अनादि है" । यह कर्म अशुभ और शुभ भेद से दो प्रकार का है । वेद द्वारा निषिद्ध नरक आदि अनिष्टों का साधन ब्राह्मणवध आदि अशुभ हैं और वेद विदित काम्यादि कर्म शुभ हैं । इनमें स्वर्गादि इष्ट का साधन काम्य कर्म है, जिसके न करने से प्रत्यवाय हो, ऐसा सन्ध्योपासन अग्निहोत्रादि कर्म नित्य कहाते हैं । पुत्र-जन्म के उपलक्ष में जो जातेष्टयादि कर्म होते हैं, वे नैमित्तिक हैं । पापों का क्षय करने वाले चन्द्रायण आदि जो प्रायश्चित रूप शुभ कर्म हैं, वे अनेक प्रकार के हैं । इन में निषिद्ध कर्मों की तरह काम्य-कर्म भी मुमुक्षु के लिये हेय है, क्यों कि मुक्ति में ये बाधक हैं और नित्य कर्म चित्त शुद्ध करने वाले हैं, इससे ये अनुष्ठान करने के योग्य हैं ॥ १ ॥

किञ्च, ज्ञानोदयात् पूर्वं यत् सञ्चितं तत् शुभमशुभञ्च ज्ञानेन विनश्यति । ततः परं क्रियमाणं न तेन विद्वान् विलिप्यते । तथा—यद्यथेषी का तूल मग्नौ प्रोतं प्रद्रूये तैवं हास्य सर्व पाप्मानः प्रद्रूयन्त इति । यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यत एव मेवात्मविदि पापं कर्म न श्लिष्यत इति च छान्दोग्य श्रुतिः । अत्र सञ्चित क्रियमाणयोः पापयो विनाश विश्लेषा वुक्तै । "उभे उहै वैष एते तरत्य मृतः साध्व साधुनी" इति बृहदारण्यक श्रुति । अत्र तयोः पाप पुण्य यो स्तौ दर्शितौ उभे सञ्चित क्रियमाणे साध्व साधुनी पुण्य पापे एष विद्वान् तरत्युल्लंघयति, सञ्चित योर्विनाशः । क्रियमाणयोस्त्व श्लेष इत्यर्थः ॥ २ ॥

और ज्ञानोदय से पूर्व जो शुभ अशुभ सञ्चित कर्म हैं, वे ज्ञान से नष्ट हो जाते हैं। इसके अनन्तर जो क्रियमाण कर्म हैं, उन से ज्ञानी पुरुष लिप्त नहीं होता। जिस प्रकार रुई अग्नि के संयोग से भस्म हो जाती है, उसी प्रकार ज्ञानी के समस्त पाप भस्म हो जाते हैं। जिस प्रकार कमल के पत्ते को जल स्पर्श नहीं करता, उसी प्रकार आत्मवेत्ता पुरुष को पाप कर्म स्पर्श नहीं करते। यह छान्दोग्य श्रुति में लिखा है। इन श्रुतियों में सञ्चित और क्रियमाण दोनों प्रकार के पापों का विनाश एवं विश्लेष कहा गया है। बृहदारण्यक श्रुति में लिखा है—"यह ज्ञानी पुरुष 'साध्व साधुनी' इन दोनों प्रकार के कर्मों को तर जाता है।" इस श्रुति में सञ्चित और क्रियमाण इन दोनों प्रकार के पाप पुण्यों को विनाश और विश्लेष कहा गया है, अर्थात् सञ्चित का विनाश एवं क्रियमाण का विश्लेष होता है ॥ २ ॥

इत्थं ज्ञाने नैव विनिवृत्त कर्म मल स्तेनैव हरिपदं प्राप्याक्षय सुख भाक् तत्रैव निवसति ततः पुनर्न निवर्तते। "ब्रह्म विदाप्नोति परं" "तमेव विदित्वा अति मृत्युमेति नान्य पन्था विद्यते अय नाय" "सोऽश्नुते सर्वान् कम्भान्" "नस-पुनरा वर्तते" इति श्रवणात् ॥ ३ ॥

इस प्रकार ज्ञान से ही कर्म मल का विनाश होता है। उसी से हरि पद की प्राप्ति पूर्वक अक्षय सुख का अधिकारी बन कर वहीं निवास करता है, वहां से फिर नहीं लौटता। जैसा कि श्रुतियों में लिखा है—ब्रह्म जानने वाला ही ब्रह्म पद को प्राप्त होता है, उसी को जान कर ही मृत्यु से पार होता है, इसके अतिरिक्त परं पद का दूसरा कोई मार्ग नहीं है, वह फिर नहीं लौट कर आता ॥ ३ ॥

तच्च ज्ञानं द्विविधं—परोक्षमपरोक्षञ्च। परोक्षं शब्दं, अपरोक्षन्तु ह्लादिनी सार-समवेत सम्विद्रूपम्। तच्च भक्ति शब्द व्यपदेश्यं दृष्टं। विज्ञान घना नन्दघन सच्चिदानन्दैकरसे भक्ति योगे स तिष्ठ-तीति गोपालोपनिषदि। तत्र पूर्वं पर-म्परया परन्तु सक्षादब्रह्म प्रापकं बोध्यं। केचित्तु महत्तम प्रसंग लब्धेन शुद्ध भक्ति योग रूपेण श्रवण कीर्तनादि कर्मणैव चित्त शुद्धिं हरि पदञ्च लभन्ते इति दृष्टम्। "पिबन्ति ये भगवत आत्मनः

सतां, यथामृते श्रवण पुटेषु संभृतं । पुनन्ति विषय विदूषिताशयं, व्रजन्ति तच्चरण सरो रुहान्तिकमित्यादिषु ॥ ४ ॥

यह ज्ञान दो प्रकार का है-परोक्ष और अपरोक्ष। शब्द द्वारा परोक्ष ज्ञान होता है और अपरोक्ष ज्ञान ह्लादिनी शक्ति के सार से युक्त सम्वित रूप है, जो कि शास्त्रों में भक्ति के नाम से कहा गया है। विज्ञान घनानन्द सच्चिदानन्द के रस भक्ति योग में वह स्थित है, ऐसा गोपालोपनिषद् में लिखा है। इनमें पहिला (परोक्ष ज्ञान) परम्परा रूप से एवं पिछला (अपरोक्ष ज्ञान) साक्षात् रूप से ब्रह्म प्राप्ति का कारण है,यह जानना चाहिये। कोई कोई तो महत्पुरुषों के सत्संग से प्राप्त शुद्ध भक्ति योग रूप श्रवण कीर्तनादि कर्म के द्वारा ही चित्त शुद्धि एवं हरि चरणों की प्राप्ति मानते हैं। श्रीमद्भागवत में लिखा है-जो अपने कर्ण पुटों से साधु पुरुषों की आत्मा श्रीभगवान की कथा रूपी अमृत का पान करते हैं, उनके विषयों से दूषित अन्तःकरण पवित्र हो जाते हैं और वे भगवच्चरणारविन्दों के समीप पहुँच जाते हैं ॥ ४ ॥

तदित्थं तत्व यञ्चकं विस्तृतं,
श्री वैष्णवे चोक्त मेतत् ।
विष्णोः स्वरूपात् परतो हितेऽन्ये,
रूपे प्रधानं पुरुषञ्च विप्र !
तस्यैव तेऽन्येन धृते वियुक्ते,
रूपेण यत्तात् द्विज काल संज्ञं ॥
जनैश्च कर्म स्तिमितात्म निश्चयै रित्यादिना । तदेवमेतत पञ्चक विवेकी वर्णित साधन सम्पत्तिमान् विशुद्धः श्री हरिपदमुपलभ्य तत्रैव सर्वदा दिव्यति इति ॥ ५ ॥

इस प्रकार यह तत्व पंचक श्रीविष्णु पुराण में भी वर्णित हुआ है:--

"हे विप्र ! प्रधान (प्रकृति) एवं पुरुष (जीव) यह दोनों रूप निरूपाधि विष्णु रूप से भिन्न हैं। हे द्विज ! जिस रूप के द्वारा सृष्टि के समय ये दोनों संयुक्त और प्रलय के समय वियुक्त होते हैं, वह उन (विष्णु) का काल नामक रूप है। जिनका आत्म-निश्चय कर्म के द्वारा स्तिमित हो गया है" इत्यादि।

इस तत्व पंचक के विवेक वाला व्यक्ति उक्त साधन सम्पत्ति युक्त होने पर मुक्त होकर श्रीहरिपद प्राप्ति पूर्वक सर्वदा वहीं प्रकाशित रहता है ॥ ५ ॥

नित्यं निवसतु हृदये चैतन्यात्मा मुरारिर्नः । निरवद्यो निर्वृतिमान् गजपति रनुकम्पया यस्य ॥ ६ ॥

राधादि दामोदर नाम बिभ्रता,
विप्रेण वेदान्त मयः स्यमन्तकः ।
श्रीराधिकायै विनिवेदिता मया,
तस्याःप्रसादं स तनोतु सर्वदा ॥ ७ ॥

इति वेदान्त स्यमन्तके कर्मतत्व
निरूपणः षष्ठः किरणः ।

❀ समाप्तश्चायं ग्रन्थः ❀

श्रीचैतन्य मुरारि मम हृदय करहु नित वास ।
गजपति पै करके कृपा जिन काटो भव पाश ॥ ६ ॥
रट राधा दामोदर को शुभ नाम निरन्तर ।
रचो विप्र वेदान्त स्यमन्तक रत्न रुचिर वर ॥
किया निवेदन ताहि राधिका के कोमल कर ।
करैं प्रसन्न सदाहि तिनैं यह भेट अधिकतर ॥ ७ ॥

वेदान्त स्यमन्तक के कर्मतत्व निरूपण नामक
षष्ठ किरण का तत्वप्रकाश भाषाभाष्य
समाप्त हुआ ।

श्री गोपालगुरु गोस्वामिने नमः ।

श्रीमन्मुरारि-तनयं विनयादमन्दं वन्दे सदैव मकरध्वज-पण्डिताख्यम् । श्रीगौरचन्द्र-कृपयार्पित-गौरवः श्रीगोपाल पूर्व्व-गुरुरित्यभिधां दधे यः ॥ १ ॥ वन्दे तमेव तिलकं किल कल्पयित्वा गौरप्रभु हरिपदाकृति यस्य भाले । स्वस्यासने समुपवेश्य जगत्त्रयस्य विस्मापिकामपि विकाशयति स्म शक्तिम् ॥ २ ॥ शिक्षागुरुं स्वकृपया स शचीतनूजो यं कारणं किमपि वीक्ष्य चकार धीरम् । सिद्धाख्ययाप्यभिदधे स्वयमेव मञ्जु मेधेति तं गुरुवरं शरणं भजामि ॥ ३ ॥ श्रीराधया व्रजविधोरपि यश्च तुङ्गविद्यानुगोऽप्यनुदिनं भजनेष्वनन्यः । नित्यं सखीगणयुतो रमते व्रजे श्रीगोपालमेव कलये शरणं गुरुं तम् ॥ ४ ॥ गोस्वामिनः षड्दिता अधिकाश्चतुर्भिः षष्टि र्महान्त इह गौरहरे र्निदेशात् । गोपालका अतिशयात् किल मनिरे यं निःसंशया गुरुतया तमहं प्रणौमि ॥ ५ ॥ यत् प्रेमवश्य-हृदयः स दयासमुद्रः प्रोल्लास्य सान्द्रगुणतां प्रभु-गौरचन्द्रः । जीवानतीव विनयेन समुद्दधार वन्दे गुरूत्तममहं तमिमं महान्तम् ॥ ६ ॥ यस्तादृशोऽपि भगवद्गुणकर्म्मनाम्नां सङ्कीर्त्तन-श्रवण-संस्मरणादिभक्त्या । आपामरं जगदिदं स्वयमुद्दधार गोपाल-पूर्व्वं गुरुमेतमहं नतोऽस्मि ॥ ७ ॥ चैतन्यचन्द्र-कृपया चिरमेव राधाकान्ताङ्घ्रिपद्मयुगयोः परिचर्य्ययोच्चैः । तन्नाव भावितमति र्न तनुं बुबोध गोपाल-पूर्व्वं गुरुमेनमहं नमामि ॥ ८ ॥ श्रीमद्गोपालगुर्व्वष्टकमिदममलं संयता ये पठेयुः प्रातः सायञ्च भक्त्या हरिगुण कथयासाविता हृष्टचित्ताः । श्रीराधाकान्त-सेवां वितरितुमचिरं रातु भक्तिञ्च तेभ्यः स श्रीगोपाल गुर्व्वांह्रिय इह करुणः सम्मतयः सतां च ॥ ९ ॥

गोस्वामिनां स्तोत्र पाठात् गोस्वामिपदभाग्भवेत्
र[illegible] प्रसादाच्चराणां गौराङ्गे सुरतर्भवेत् ।

श्रीपाद गोपालगुरु गोस्वामी का अष्टक जीर्ण ग्रन्थ से उद्धार किया गया है । यदि पाठान्तर हो तो सूचित कीजिये ।

श्रीश्रीलोकनाथ-प्रभुवराष्टकम् ।

यः कृष्णचैतन्य-कृपैकवित्तः तत्प्रेम-हेमाभरणाढ्य-चित्तः । निपत्य भूमौ सततं नमामस्तं लोकनाथं प्रभुमाश्रयामः ॥ १ ॥ यो लब्ध-वृन्दावन-नित्यवासः परिस्फुरत्-कृष्ण-विलास-रासः । स्वाचार-चर्य्या-सततावि रामस्तं लोकनाथं ॥ २ ॥ सदोल्लसद्भागवतानुरक्त्या यः कृष्ण-राधा-श्रवणादि-भक्त्या । अयातयामीकृत-सर्व्वयामस्तं लोकनाथं ॥ ३ ॥ वृन्दावनाधीश-पदाब्जसेवा स्वादेऽनुमज्जन्ति न हन्त के वा । य स्तेष्वपि श्लाघ्यतमोऽभिरामस्तं ॥ ४ ॥ यः कृष्ण-लीलारस एव लोकान ननुन्मुखान वीक्ष्य बिभर्त्ति शोकान् । स्वयं तदास्वादन-मात्र कामस्तं लोकनाथं ॥ ५ ॥ कृपाबलं यस्य विवेद कश्चित् नरोत्तमो नाम महान् विपश्चित् । यस्य प्रथीयान् विषयोपरामस्तं लोकनाथं ॥ ६ ॥ रागानुगावर्त्मनि यत्प्रसादाद् विशन्त्यविज्ञा अपि निर्व्विषादाः । जने कृतागस्यपि यस्त्ववामस्तं लोकनाथं ॥ ७ ॥ यद्दास दासानुग-दास-दासाः वयं भवामः फलिताभिलाषाः । यदीयतायां सहसा विशामस्तं लोकनाथं ॥ ८ ॥ श्रीलोकनाथाष्टकमत्युदारं भक्त्या पठेद् यः पुरुषार्थ सारम् । स मञ्जुलाली-पदवीं प्रपद्य श्रीराधिकां सेवत एव सद्यः ॥ ९ ॥ सोऽयं श्रीलोकनाथः स्फुरतु पुरुकृपा-रश्मिभिः स्वैः समुद्यन् उद्धृत्यद्धृत्य यो नः प्रचुरतम-तमः कूपतो दीपिताभिः । दृग्भिः स्वप्रेमवीथ्या दिशमदिशदहो यां श्रिता दिव्यलीला रत्नाढ्यं विन्दमाना वयमपि निभृतं श्रील-गोवर्द्धने स्मः ॥ १० ॥

इति श्रीमद्विश्वनाथ-चक्रवर्त्ति-ठक्कुर-विरचित-स्तवामृतलहर्य्यां श्रीश्रीलोकनाथ-प्रभुवराष्टकं सम्पूर्णम् ।

श्रीमन्माध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदाय वीथि पथिक विश्व वैष्णव राज सभाभाजन श्रीमद्रूप सनातन गोपाल भट्ट जीवरघुनाथ गोस्वामिपाद प्रदर्शित ग्रन्थावलि।

श्रीसनातन गोस्वामी ग्रन्थावलि।

१ बृहद्भागवतामृत सटीक २ श्रीमद्भागवत बृहद्वैष्णव तोषणी टीका, ३ श्रीहरिभक्तिविलास टीका, ४ लीलास्तव।

श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी।

१ हरिभक्तिविलास, २ सत्क्रियासार दीपिका।

श्रीरूप गोस्वामी ग्रन्थावली।

१ हंसदुतकाव्य, २ उद्धवसन्देश, ३ छन्दोष्टादश, ४ स्तवमाला, ५ विदग्धमाधव नाटक, ६ ललितमाधव ७ दानकेलि कौमुदी भाणिका, ८ भक्तिरसामृतसिन्धु, ९ पद्यावली, १० नाटकचन्द्रिका, ११ लघुभागवतामृत, १२ सामान्यविरुदावली लक्षण, १३ राधाकृष्णगणोद्देश दीपिका, १४ उज्ज्वलनीलमणि, १५ कृष्णजन्मतिथि, १६ आख्यातचन्द्रिका, १७ मथुरा माहात्म्य, १८ सनातनाष्टक।

श्रीजीव गोस्वामी ग्रन्थावलि।

१ श्रीहरिनामामृत व्याकरण, २ धातुसुत्रसंग्रह ३ स्तवमाला, ४ राधाकृष्णार्चन दीपिका ५ माधवमहोत्सव, ६ गोपालचम्पू ७ सङ्कल्पकल्पवृक्ष, ८ षट् सन्दर्भ ९ सर्वसम्वादिनी, १० गोपालतापनी टीका, ११ उज्ज्वलनीलमणि लोचनरोचनी टीका, १२ भक्तिरसामृतसिन्धु दुर्गमसङ्गमनी टीका, १३ ब्रह्मसंहिता टीका, १४ अग्निपुराणस्थ गायत्री टीका, १५ रसामृत शेष, १६ पद्मपुराणे राधाकृष्ण चरणचिह्न १७ योगसार स्तव टीका, १८ क्रमसन्दर्भ श्रीमद्भागवत टीका, १९ बृहत्क्रमसन्दर्भ श्रीमद्भागवत टीका, २० लघुतोषणी श्रीमद्भागवत टीका, २१ सारसंग्रह, २२ [illegible] २३ गौरविरुदावली।

श्रीरघुनाथदास गोस्वामी।

१ स्तवावली, २ दानकेलिचिन्तामणि, ३ मुक्ताचरित,

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती कृत।

१ सुरतकथामृत, २ निकुञ्जकेलिविरुदावलि, ३ चमत्कारचन्द्रिका, ४ श्रीकृष्णभावनामृत काव्य, ५ ऐश्वर्य्य कादम्बिनी, ६ माधुर्य्य कादम्बिनी, ७ भक्तिसामृतसिन्धु बिन्दु, ८ भागवतामृतकणा, ९ उज्ज्वलनीलमणि किरण, १० उज्ज्वलनीलमणि आनन्दचन्द्रिका टीका, ११ गौराङ्गलीलामृत, १२ संकल्पकल्पद्रुम, १३ अलङ्कारकौस्तुभ टीका, १४ प्रेमसम्पुट, १५ भक्तिरसामृतसिन्धु टीका, १६ प्रेमभक्तिचन्द्रिका, १७ श्रीमद्भागवत सारार्थदर्शिनी टीका, १८ श्रीमद्भागवद्गीता सारार्थवर्षिनी, १९ चैतन्यचरितामृत टीका।

श्रीबलदेव विद्याभुषण ग्रन्थावलि।

१ प्रमेयरत्नावली, २ वेदान्तस्यमन्तक, ३ वेदान्त दर्शन (गोविन्दभाष्य), ४ पदकौस्तुभ, ५ छन्दःकौस्तुभ, ६ भाष्यपीठक, ७ सिद्धान्तदर्पण, ८ दशोपनिषद् भाष्य, ९ तत्वसन्दर्भ भाष्य, १० स्तवमाला भाष्य, ११ काव्यकौस्तुभ, १२ श्रीमद्भागवत टीका, १३ श्रीमद्भगवद्गीता भूषण भाष्य, १४ गोपालतापिनी टीका।

श्री कवि कर्णपूर गोस्वामी ग्रन्थावलि।

१ अलङ्कार कौस्तुभ, २ आनन्द वृन्दावन चम्पु, ३ कृष्णाह्निककौमुदी, ४ चैतन्यचरितामृत महाकाव्य, ५ चैतन्यचन्द्रोदय नाटक ६ आर्य्याशतक, ७ गौरगणोद्देश दीपिका, ८ वर्णप्रकाश, ९ राधाकृष्णगणोद्देश दीपिका।

श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी।

१ गोविन्दलीलामृत २ श्रीचैतन्यचरितामृत ३ श्रीकृष्णकर्णामृत सारङ्ग रङ्गदा टीका, ४ श्रीगोपालभट्ट जीव रघुनाथ गुणाष्टकम्।